गांधीजी

खण्ड दस

अहिंसा

(चतुर्थ भाग)



सम्पादक-मण्डल

कमलापति त्रिपाठी (प्रधान सम्पादक)
कृष्णदेवप्रसाद गौड़
काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'
करुणापति त्रिपाठी
विश्वनाथ शर्मा (प्रबंध सम्पादक)

मूल्य डेढ़ रुपया

(प्रथम संस्करण : नवम्बर, १९४९)

प्रकाशक
जयनाथ शर्मा
व्यवस्थापक
काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग
बनारस छावनी

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव
अध्यक्ष
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट
काशी

सूची

❀

प्रकाशकका वक्तव्य

गांधीजी ग्रन्थमालाका यह सातवां प्रकाशन ग्रंथमालाके दसवें खंड अहिंसाका चतुर्थ भाग है। अहिंसाके सिद्धान्तोंपर पूज्य बापूकी लेखनीमें जो अमूल्य धारा जगतको प्राप्त हुई है उसका यह चतुर्थ संग्रह है। इस भागमें पूज्य बापूके अहिंसा संबंधी लेख समाप्त हो गये।

अहिंसा खंडके चार भागोंमें प्रायः १९२१ से, जबसे बापूने भारतके राजनीतिक आन्दोलनका सक्रिय रूपसे नेतृत्व ग्रहण किया, सन् १९४८ तकके लेखोंका संग्रह है। तिथिके क्रमसे लेख दिये गये हैं। बापूका अंतिम और सबसे बड़ा 'अंगरेजों-भारत छोड़ो' आन्दोलन छिड़नेके कारण हरिजन-सेवकका प्रकाशन १९ अगस्त १९४२ से १० फरवरी १९४६ तक बन्द था। इस कारण इन वर्षोंमें कोई लेख प्रकाशित नहीं हुए।

इस भागके संकलन तथा संपादनमें श्री लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय' श्री विद्यारण्य शर्मा तथा श्री बानेश्वरी प्रसादसे सहायता मिली है। काशीके प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्ता तथा गांधी भक्त श्री रामसूरत मिश्र, श्री कृष्णदेव उपाध्याय तथा स्वर्गीय श्री बैजनाथ केडिया तथा कारमाइकल पुस्तकालयके संग्रहोंसे हमें बड़ी सहायता मिली है। इस भागके प्रकाशनकी अनुमति देकर श्री जीवन जी डाह्याभाई देसाई (व्यवस्थापक ट्रस्टी, 'नवजीवन' ट्रस्ट, अहमदाबाद) ने कृपा की है। उपर्युक्त सज्जनोंके हम अत्यन्त आभारी हैं।

हमें हर्ष है कि जनताने हमारे प्रयासका स्वागत किया। इसीके फलस्वरूप अबतकके प्रकाशित ६ प्रकाशनोंकी पहली आवृत्ति समाप्त हो गयी और नित्यप्रति ग्राहकोंकी मांग आती रहती है। हम शीघ्र ही द्वितीय आवृत्ति

प्रकाशित करनेमें समर्थ होंगे। गांधीजी ग्रन्थमालाके इस अंकको मिलाकर सात प्रकाशन हो चुके अर्थात् श्रद्धाञ्जलियां भाग एक, दो, कवियोंकी श्रद्धाञ्ज-लियां, अहिंसा प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ भाग। बीचके खण्डोंकी सामग्रीका संकलन हो रहा है। ज्यों ज्यों खण्ड तैयार होते जायेंगे प्रकाशित होते रहेंगे। अछूतोद्धारके दो भागोंकी सामग्री प्रेसमें है। आशा है शीघ्र ही तैयार करके हम पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत कर सकेंगे।

❃

आमुख

गांधीजीके जीवन, उनके प्रयोगों और उनकी सफलताका आधार सत्य और अहिंसा रहा है। वे उसीके लिये जिये और उसीके लिये अपने,' उन्होंने प्राणोंकी आहुति दी। अहिंसा प्रायः सभी मुख्य धर्मोका मूल आधार रही है। यद्यपि अहिंसाका तात्विक उपदेश तो उनके पहिले भी अनेक मनीषियोंने दिया किन्तु आदर्शवाद और यथार्थवादका कल्याणकारी सामञ्जस्य गांधीजीके उपदेशोंमें ही था। उन्होंने उसे मूर्त रुप दिया और भारतके असंख्य नर नारियोंको अहिंसाके पथपर चलाकर दासतासे मुक्त कराया। यह उनके जीवनकी सबसे बड़ी सफलता थी।

यद्यपि स्वाधीनता प्राप्तिके बाद ही दुर्भाग्यवश एकबार फिर साम्प्रदा-यिकता और हिंसाका विष फैल गया था और आशंका हो रही थी कि यदि यह हिंसा न रुकी तो आजादी नष्ट हो जायगी। फिर भी बापूकी तपस्या, त्याग और जागरुकताका ही परिणाम था कि इतने थोड़े समयमें नोआखालीसे पंजाब तक फैली साम्प्रदायिकता और हिंसाकी आग इतनी जल्दी ठंडी पड़ गयी। आशा है देशमें इसी प्रकार शान्ति बनी रहेगी और हम संसारके सम्मुख सिर ऊंचा करके कह सकेंगे कि हमें अपने राष्ट्रपितापर गर्व और हम उनके आदर्शपर चलनेकी चेष्टा करते हैं।

इस भागमें उनकी अहिंसा सम्बन्धी लेखमाला समाप्त हो गयी। इन लेखोंमें उन्होंने अहिंसाके सब व्यापक पहलुओंपर विचार करनेकी निश्चित योजना बनायी है। अपने श्रद्धालु भक्तोंसे लेकर कटु आलोचकों तकका समाधान करनेकी कोशिश की है। स्वाधीनता आन्दोलन चलाते समय उनके जो विचार थे, उनकी मान्यताएं थीं, उनके अनुसार स्वाधीनता प्राप्तिके बाद कांग्रेस सरकारें साम्प्रदायिकताकी आग अहिंसासे न रोक सकीं। उन्हें फौज और पुलीसका

आश्रय लेना पड़ा। इसकी उन्हें बहुत चोट थी फिर भी उन्होंने अपना प्रयत्न जारी रखा था।

उनका विश्वास था कि यद्यपि देखनेमें सब ओर हिंसा व्याप्त जान पड़ती है। फिर भी यदि देखा जाय तो मनुष्य दिन प्रतिदिन अपने हिंसक स्वभावको छोड़कर अहिंसाकी ओर बढ़ रहा है। मनुष्यकी सभ्यताका विकास उसे अहिंसाकी ओर ले जा रहा है। एक दूसरेको मार कर खा जाने वाले मनुष्यने पहिले पशुओंका शिकार और आगे चलकर खेती करके अपने उदरका पोषण शुरू किया। इसमें अहिंसाकी भावना ही थी। आगे चलकर गाँव और शहर बसानेमें कुटुम्बकी भावना आयी जो अब स्वाभाविक होती जा रही हो।

मनुष्य पशु रूपमें हिंसक हो सकता है किन्तु आत्माके रूपमें तो वह अहिंसक रहता है। बापूने तो महायुद्धको, जो हिंसाकी पराकाष्ठा समझा जा सकता है, हिंसाकी होली समझा था। उनका ख्याल था कि इसमें हिंसाका अन्त होकर अहिंसाकी विजय होगी।

जीवन भर उपदेशों और व्यवहारिकताके साथ अपनी कार्यविधिसे बापूने हमें सिखलाया कि मानव जातिसे प्रेम करो, अत्याचार और अनाचारसे घृणा करो किन्तु घृणा किसी व्यक्तिसे न हो। जीवनका मार्ग शान्तिमें, प्रेम और धर्ममें हो घृणा और विद्वेषमें नहीं। महायुद्धसे पीड़ित संसार आज एटम बमके इस युगमें अनुभव करने लगा है कि उनके उपदेशोंसे ही संसारमें फिरसे शान्ति, सुख और वैभवकी स्थापना हो सकती है।



इतना खराब तो नहीं !

एक मित्र, एक अंग्रेज मित्रके पत्रमेंसे निम्नलिखित हिस्सा भेजते हैं:—

"क्या आपको लगता है कि महात्माजीके हरेक अंग्रेजके प्रति निवेदनका एक भी अंग्रेजके दिलपर अच्छा असर हुआ होगा? शायद इस अपीलके कारण जितना वैर भाव बढ़ा है, उतना हालमें किसी दूसरी घटनासे नहीं बढ़ा। आजकल हम एक अजीबो-गरीब और नाजुक जमानेमें से गुजर रहे हैं। क्या करना चाहिये, यह तय करना बहुत ही कठिन है। कम-से-कम जिस बात में साफ खतरा दीखता हो, उससे तो बचना ही चाहिये। जहाँ-तक मैं देखता हूँ, महात्माजीकी शुद्ध अहिंसाकी नीति हिन्दुस्तानको अवश्य ही बरबादीकी तरफ ले जायगी। मैं नहीं जानता कि वह खुद इसपर कहाँतक चलेंगे। उनमें अपने आपको अपनी सामग्रीके मुताबिक बनानेकी अजीब शक्ति है।"

मैं तो जानता हूँ कि एक नहीं, अनेक हृदयोंपर मेरे निवेदनका अच्छा असर हुआ है। मैं यह भी जानता हूँ कि कई अंग्रेज मित्र चाहते थे कि मैं कोई ऐसा कदम उठाऊँ। मगर उन्हें मेरी यह बात पसन्द आयी है, यह मेरे लिए चाहे कितनी ही खुशीकी बात क्यों न हो, मैं इसपर सन्तोष मानकर बैठना नहीं चाहता। मेरे पास इस अंग्रेज भाईकी टीकाकी कीमत काफी है। इस ज्ञानसे मुझे सावधान होना चाहिए। अपने विचारोंको प्रगट करनेके लिए शब्दोंको और ज्यादे सावधानीसे चुनना चाहिये। मगर नाराजगीके डरसे, भले ही वह नाराजगी प्रिय-से-प्रिय मित्रकी क्यों न हो, जो धर्म मुझे स्पष्ट नजर आता है, उससे मैं हट नहीं सकता। यह निवेदन निकालनेका धर्म इतना जबरदस्त और आवश्यक था कि मेरे लिए उसे टालना अशक्य था। मैं यह लेख इस वक्त लिख रहा हूँ, यह बात जितनी निश्चित है, उतनी ही निश्चित यह बात भी है कि जिस ऊँचाईपर पहुँचनेका मैंने ब्रिटेनको निमंत्रण दिया है, किसी-न-किसी दिन दुनियाको वहाँ पहुँचना ही है। मेरी श्रद्धा है कि जल्दी ही दुनिया जब इस शुभ दिनको देखेगी, तब हर्षके साथ वह मेरे इस निवेदनको याद करेगी। मैं जानता हूँ कि वह दिन इस निवेदनसे नजदीक आ गया है।

अंग्रेजोंसे अगर यह प्रार्थना की जाय कि वह जितने बहादुर आज हैं, उससे भी ज्यादा बहादुर और अच्छे बनें, तो इसमें किसी भी अंग्रेजको बुरा क्यों लगे? वह ऐसा करनेके लिए अपनेको असमर्थ बतला सकता है, मगर उसके दैवी स्वभावको जागृत करनेके लिए निवेदन उसे बुरा क्यों लगे?

इस निवेदनके कारण भला, वैर-भाव क्यों पैदा हो? निवेदनके तर्जमें या विचारमें वैर-भाव पैदा करनेवाली कोई चीज ही नहीं है। मैंने लड़ाई बन्द करनेकी सलाह नहीं दी। मैंने तो सिर्फ यह सलाह दी है कि लड़ाईको मनुष्य-स्वभावके योग्य, दैवी तत्त्वके लायक बुलंद पायेपर ले जाया जाय। अगर ऊपर लिखे पत्रका छिपा अर्थ यह है कि

यह निवेदन निकालकर मैंने नाजियोंके हाथ मजबूत किये हैं, तो जरा-सा भी विचार करने-पर यह शंका निर्मूल सिद्ध हो जायेगी। अगर ब्रिटेन लड़ाईका यह नया तरीका अख्त्यार कर ले, तो हेर हिटलर उससे परेशान हो जायेंगे। पहली ही चोटपर उन्हें पता चल जायगा कि उनका विशाल अस्त्र-शस्त्रका सामान सब निकम्मा हो गया है। योद्धाके लिए तो युद्ध उसके जीवनका साधन है, भले वह युद्ध स्वरक्षणके लिए हो या दूसरों पर आक्रमण करनेके लिए। अगर उसे यह पता चल जाता है कि उसकी युद्ध-शक्तिका कुछ भी उपयोग नहीं, तो वह बेचारा निर्जीव सा हो जाता है।

मेरे निवेदनमें एक बुजदिल आदमी एक बहादुर राष्ट्रको अपनी बहादुरी छोड़नेकी सलाह नहीं दे रहा है, न एक सुखका साथी एक मुसीबतमें आ फँसे अपने मित्रका मजाक ही उड़ा रहा है। मैं पत्र लेखकको कहूँगा कि इस खुलासेको ध्यानमें रखकर फिरसे एकबार मेरा यह निवेदन पढ़ें।

हाँ, हेर हिटलर और सब आलोचक एक बात कह सकते हैं कि मैं एक बेवकूफ आदमी हूँ, जिसको दुनियाका या मनुष्य स्वभावका कुछ भी ज्ञान नहीं है। यह मेरे लिए एक निर्दोष प्रमाण-पत्र होगा, जिसके कारण न वैर-भाव पैदा होना चाहिए, न क्रोध। यह प्रमाण-पत्र निर्दोष होगा, क्योंकि मुझे पहले भी कई ऐसे प्रमाण-पत्र मिल चुके हैं। उनकी यह सबसे नयी आवृत्ति होगी और मैं आशा रखता हूँ कि सबसे आखिर की नहीं, क्योंकि मेरे बेवकूफीके प्रयोग अभी खत्म नहीं हुए।

जहाँतक हिन्दुस्तानका वास्ता है, अगर वह मेरी शुद्ध अहिंसाकी नीतिको अपनाये, उसे नुकसान पहुँच ही नहीं सकता। अगर हिन्दुस्तान एकमतसे उसे नामंजूर करता है, तो भी उससे देशको किसी प्रकारका नुकसान नहीं होगा। नुकसान अगर होगा तो उन लोगोंका जो 'मूर्खता' से उसपर अमल करते रहेंगे। पत्र-लेखकने यह कह करके कि "महात्माजी अपने-आपको अपनी सामग्रीके मुताबिक बनानेकी अजीब शक्ति रखते हैं" मेरा बड़ा भारी गुण बताया है। मेरी सामग्रीकी बाबत मेरे स्वाभाविक ज्ञानने मुझे ऐसी श्रद्धा दी है कि जो हिलाई नहीं जा सकती। मुझे अन्दरसे महसूस होता है कि सामग्री तैयार है। इस अन्दरूनी आवाजने आजतक मुझे कभी धोखा नहीं दिया। मगर मुझे पिछले अनुभवकी बुनियाद पर कोई बड़ी इमारत नहीं तैयार करनी चाहिए। मेरे लिए तो एक ही कदम बस है।

हरिजन-सेवक
३ अगस्त, १९४०



अहिंसाकी परीक्षा

जो अपने आपको पूर्ण अहिंसा भक्त मानते हैं, और राजाजी इत्यादिने जो कदम उठाया है, इसे गलत समझते हैं, उनकी कड़ी परीक्षा होने वाली है। मैं मानता हूँ कि राजाजी रास्ता भूल गये हैं और राजाजी मानते हैं कि मैं राह भूल गया हूँ। राजाजीकी मान्यता सच्ची हो और मेरी झूठी, यह उतना ही संभव है, जितना कि मेरी मान्यताका सत्य होना और राजाजीकी मान्यताका झूठा होना। सच और झूठका आखिरी निर्णय तो भविष्य ही करेगा।

मगर क्योंकि मुझे अपनी मान्यताकी सचाईके विषयमें लवलेश मात्र भी शंका नहीं है, इसलिए जिन लोगोंका अभिप्राय मेरे जैसा है, उन्हें कांग्रेसमेंसे निकल जानेकी सलाह देते हुए मुझे जरा भी संकोच नहीं हुआ। मगर इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें आज ही निकल जाना है---निकल जानेकी उनकी तैयारी हो, इतना काफी है। निकल जानेका निर्णय वह लोग मुझ पर छोड़ दें। निकलनेसे पहले उन्हें इतना विचार करना होगा कि उनके निकलनेसे साथियोंको आघात नहीं पहुँचना चाहिए। निकल जानेकी बात उनकी समझमें न आये, तो धैर्यपूर्वक मुझे उन्हें समझाना होगा। कांग्रेसमेंसे उन लोगोंको निकल जानेकी सलाह देनेमें कांग्रेसका ही हित है, यह उन्हें समझना होगा। हम दोनों यह मानते हैं कि बाहरके आक्रमणके सामने मुल्ककी रक्षा अहिंसाके द्वारा की जा सके, तो ज्यादा अच्छा होगा इसलिए ऐसा एक वर्ग हो जो अपना जीवन अहिंसाकी सफलताको सिद्ध करनेमें दे दें, तो उसका होना वांछनीय है। मगर ऐसे वर्गका होना हितकर है तो वह स्पष्ट है कि वह कांग्रेससे बाहर ही रह सकता है। कांग्रेसको चाहिए कि वह उस वर्गको केवल सहन ही न करे, बल्कि उसका स्वागत करे। जहाँतक हो सके उसकी मदद करे, उसे अपनाये। अर्थात् कांग्रेस और इस वर्गके बीच जरा भी वैमनस्य न हो, कोई गलतफहमी न हो। इससे उलटा जो पहले था, उससेभी ज्यादा अच्छा संबंध हो।

ऐसा शुभ परिणाम लानेके लिए यह आवश्यक है कि अहिंसा-भक्त अपने पुराने साथियोंकी आलोचना मनमें भी न करें। उन्होंने पहले क्या-क्या किया है उसकी याद उन्हें न दिलायें। अगले कथनोंमें कोई भूल रही हो, तो मनुष्यका धर्म है कि वह उसे सुधारे। मगर यह भी संभव है कि उनके अगले वचनोंका जो अर्थ दूसरे करते हैं, वह अर्थ वह स्वयं उन वचनोंमें न देखते हों; इसलिए उत्तम मार्ग यही है कि एक दूसरेके मतभेदोंको प्रेमपूर्वक सहन किया जाय। एक दूसरे को बरदाश्त करनेकी खातिर दोनों अलग-अलग काम करें, और ऐसा करते हुए जहाँ हो सके, वहाँ एक दूसरेकी मदद करें।

ऐसा वातावरण बनानेमें कुछ देर लगना संभव है। हम सब इस दिशामें प्रयत्न करेंगे, तो सफलता अवश्य मिलेगी।

इस दरम्यान, सब लोग मेरे सुझाये रचनात्मक कार्योंमें लगे रहें। उनमें अधिक प्रगति करें। पूर्ण अहिंसा-भक्तोंकी सूची हरेक प्रान्तमें एक या एकसे ज्यादा नेता तैयार करें। वक्त आनेपर हरेक प्रान्तके मुख्य अहिंसा-भक्तोंको एकत्र करनेकी मेरी धारणा है। मगर मैं एक भी कदम पक्की तरह विचार किये बगैर नहीं उठाऊँगा।

हरिजन-सेवक

१० अगस्त, १९४०



अहिंसा असंभव है ?

"अहिंसा एक अमोघ हथियार है। जिस मनुष्य ने अहिंसा शक्तिको पूर्णतया साध्य कर लिया है, उसका मुकाबिला दुनियाकी कोई भी शक्ति नहीं कर सकती। इसे हम सिद्धान्त रूपसे भले ही स्वीकार कर लें, मगर जब यह विचार करने बैठते हैं कि व्यवहारमें यह कहाँतक संभव है, तब दूसरे कई प्रश्न खड़े हो जाते हैं। भले ऐसा कोई सहयोगी हो कि जो सिंह, बाघ, भेड़िया, जैसे हिंसक प्राणियोंको भी अपने प्रभावसे गाय, बकरी जैसा गरीब बना सके, पर साधारण जनसमूह तो बाघ, भेड़िया इत्यादिसे बचनेके लिए बन्दूक या दूसरे ऐसे ही साधन का उपयोग कर सकते हैं।

"आपके जैसा अनन्त प्रभाव रखनेवाला मनुष्य विचार मात्रसे दूसरोंको जीत सकता है। लेकिन साधारण जन-समूह तो अपने लाभके लिए कचहरी, वकील या अन्य साधनोंका ही उपयोग करता है। अनंत भूत कालमें भी, अहिंसा शक्ति प्राप्त करके व्यवहारमें उसका आचरण करनेवाले व्यक्ति हमने विरले ही चुने हैं। भगवान बुद्धने थोड़े समयके लिए अपनी विचार प्रणालीके अनुसार समाजका नेतृत्व किया, मगर बादमें समाज, भगवान बुद्धके मार्ग-दर्शनको भूलकर कुत्तेकी पूँछ की तरह फिर पूर्ववत् ही आचरण करने लगा। भूतकालका विचार करते हुए यह बात असंभव मालूम होती है कि समाज अधिकाधिक अहिंसाकी दिशामें जायगा। इसी कारण हमारे ऋषि-मुनियोंने समाजको एक तरफ रखकर सत्य और अहिंसाकी सिद्धिके लिए वनवास का सेवन किया होगा। आपके प्रभावसे थोड़से लोग भलेही अहिंसाका अभ्यास करनेको ललचायें, मगर सारे समाजका इस तरफ आना असंभव ही मालूम होता है। अर्थात् जैसे मनुष्य बाघ, भेड़िया इत्यादिसे बचनेके लिए बन्दूक या ऐसे ही दूसरे हथियारोंका उपयोग करता है, उसी तरह समाज हिन्दुस्तानकी स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए अहिंसाके सिवाय दूसरे साधनको ढूंढ़ें, यह संभावित मालूम होता है। जैसे ककहरा पढ़ता हुआ बालक तिलक-गीता जैसे ग्रंथ नहीं समझ सकता उसी तरह अहिंसा अमोघ शस्त्र है इस वस्तुको विषयोंमें तल्लीन मनुष्य या समाज कैसे समझ सकता है? आपकी प्रतिभाके कारण

थोड़ेसे लोग भले ही चकाचौंधमें आ जायें, मगर इस चीजको सब लोग मानने लगें, यह असंभव है। यहाँपर विषय-भोग कैसे किया जाये, इसीमें स्पर्धा होती है, ऐसे समाजसे अहिंसाकी सिद्धिकी आशा कैसे की जा सकती है और एक यह भी बात याद रखनी चाहिये।

"जैसे किसी आदमीको इंजीनियर या डाक्टर बनना हो तो उसे कालेजमें जानेके सिवाय दूसरा चारा ही नहीं है, उसी तरह उससे भी अनन्त महाकठिन अहिंसा शास्त्रके लिए कितनी तैयारियोंकी आवश्यकता होगी? कितने ही महाविद्यालय खोलने पड़ेंगे, जिनमें केवल अहिंसा और सत्यकी ही सिद्धिका शास्त्र सिखाया जाता होगा। उसके बदले, आज तो विलासोंका कैसे उपभोग किया जाये और कैसे उन्हें बढ़ाया जाये, इन्हीं बातोंकी शोध हुआ करती है। ऐसे समाजको अहिंसाकी ओर कैसे ले जाया जाये? क्या वह उधर जायगा? आज तो यह असंभव सा लगता है। आप इसका उत्तर देंगे तो मैं आपका आभारी हूँगा।"

इस पत्रमें लेखकने जो शंकाएँ उठायी हैं, ऐसी शंकाएँ अनेक लोगोंके मनमें पैदा होती हैं। मैंने अलग-अलग जगह ऐसी शंकाओंका समाधान भी करनेका प्रयत्न किया है। मगर चूँकि कांग्रेसकी कार्य-समितिके प्रस्तावके कारण लोग इस विषयपर विचार करने लग गये हैं, इसलिए ऊपर लिखी शंकाओंपर चर्चा करनेकी आवश्यकता मालूम होती है।

उक्त पत्रकी ध्वनि यह है कि अहिंसाका साम्राज्य असंभव है और ऐसा नहीं लगता कि अहिंसाकी तरफ समाजने कुछ प्रगति की है। बुद्ध जैसोंने कुछ प्रयत्न किया। थोड़ी-बहुत सफलता उनके जीते जी उन्हें भले ही मिली, मगर बादमें समाज तो जहाँ था वहींका वहीं खड़ा है। अहिंसा व्यक्तिगत धर्म हो सकती है। समाजके लिए वह निरर्थक है और हिन्दुस्तानको भी अपनी मुक्तिके लिए हिंसाका ही मार्ग ग्रहण करना पड़ेगा।

मुझे लगता है कि इस दलीलके मूलमें ही दोष है। अन्तिम वाक्य तो अवश्य गलत है। क्योंकि कांग्रेसने स्वराज्य-प्राप्तिके लिए तो अहिंसाका मार्ग कायम रखा ही है। इतना ही नहीं, बल्कि कांग्रेस एक कदम आगे बढ़ी है। अन्दरूनी झगड़े-फसाद, दंगे वगैरह शान्त करनेके लिए भी अहिंसाको ही रखा है या नहीं, इस विषयमें शंका उत्पन्न होती है। पर अखिल भारतीय कांग्रेस समितिने यह स्पष्ट निर्णय किया है कि वहाँ भी अहिंसाका ही उपयोग करना है। केवल बाहरी आक्रमणके लिए कांग्रेसने सेनाकी आवश्यकता स्वीकार की है। इसमें भी हम देख चुके हैं कि अखिल भारतीय समितिकी खासी अच्छी संख्याने इस प्रस्तावके खिलाफ विरोध प्रगट किया है। ऐसे सिद्धान्तके प्रश्नमें यदि विरोध हो, तो उसे ध्यानमें तो रखना ही पड़ता है। कांग्रेसकी नीतिका निर्णय तो बहुमत ही कर सकता है, मगर लघुमतके अभिप्रायका इससे उच्छेद नहीं हो जाता। यह अभिप्राय तो रहता ही है। जहाँ अमल करनेका सवाल आये, वहाँ लघुमतके लिए बहुमतके पीछे चलनेका धर्म पैदा होता है। जहाँ सिद्धान्तका मतभेद हो, वहाँ मतभेद तो खड़ा ही है,

और उसके अनुसार अवसर आनेपर अमलमें भी भेद पैदा हो जायगा। तात्पर्य यह है कि सर्वांगीण अहिंसाको भी समाजमें स्थान मिला है यह बताता है कि सामाजिक अहिंसा ठीक-ठीक आगे बढ़ी है। अब वहीं खड़ी रहेगी, आगे बढ़ेगी या नहीं, यह अलग प्रश्न है। इसलिए लेखककी शंकाको कांग्रेसके प्रस्तावसे तो मदद नहीं मिलती। उल्टे इस प्रस्तावसे तो उनकी शंकाका अमुक अंशमें निवारण होना चाहिए। मैं एक बड़ा व्यक्ति हूँ। मेरे प्रभावमें आकर समाजने कुछ-कुछ किया भी, मगर मेरे बाद यह सब खत्म हो जायगा ऐसा कहना कतई ठीक नहीं है। कांग्रेसमें अनेक विचारक पड़े हुए हैं। मौलाना स्वयं महान् विचारक हैं, वह तीव्र बुद्धिके हैं। उनका अध्ययन विस्तृत है। अरबी, फारसीके अध्ययनमें उनके जोड़का विद्वान मिलना कठिन है। अनुभवने उन्हें सिखाया है कि अहिंसासे ही हिन्दुस्तान आजाद होगा। अन्दरूनी विग्रहके लिए भी अहिंसासे ही काम लिया जाय, यह उनका आग्रह था। पंडित जवाहरलाल नेहरू किसीसे चकाचौंधिया जांय, ऐसी बात नहीं। उनका अंग्रेजी अध्ययन किसीसे कम नहीं है। काफी विचारके बाद उन्होंने स्वराज्य प्राप्तिके लिए अहिंसाका मार्ग स्वीकार किया है। यह सच है कि वह यह कहते हैं कि अगर अहिंसाके मार्गसे स्वराज्य प्राप्ति कठिन हो और वह हिंसासे मिल सके तो हिंसाका मार्ग स्वीकार करनेमें उन्हें संकोच नहीं होगा। किन्तु हमारे विषयके लिए यह बात अप्रस्तुत है। दूसरे अनेक ऐसे प्रौढ़ नाम हैं, जो स्वराज्य प्राप्तिके लिए केवल अहिंसाको ही साधन रूप मानते हैं। मेरे मरनेके बाद यह सब लोग अहिंसाको छोड़ देंगे, ऐसा विचार तक मनमें लाना उनका और मनुष्य स्वभावका अपमान करना है। हरएक मनुष्यमें व्यक्तित्व है, यह मानकर हमें चलना चाहिये। अगर हम एक दूसरेके प्रति इतना आदर रखें, तो हम आगे बढ़ेंगे, और यदि दुर्बल होंगे तो एक दूसरेकी मददसे ऊपर चढ़ेंगे। पत्र-लेखक या दूसरे कोई यह तो नहीं ही मानते होंगे कि कांग्रेसने और बहुतसे नेताओंने अहिंसाको अन्तिम नमस्कार कर लिया है। मैंने जो बताया है, उस मर्यादातक तो कांग्रेसकी नीति स्पष्ट हो गई है और कायम रही है। मैं स्वीकार करता हूँ कि अहिंसाके विराट स्वरूपका विचार करते हुए कांग्रेसकी आँकी हुई मर्यादा अहिंसाको बहुत संकुचित कर देती है। इससे अहिंसाकी भव्यता ढक जाती है। मगर जो दलील यहाँ चल रही है, उसके लिए तो कांग्रेस की मर्यादित अहिंसा पूरा काम देती है, क्योंकि यहाँ मैं इतना ही बतानेका प्रयत्न कर रहा हूँ कि अहिंसाका क्षेत्र बढ़ता ही चला आता है। कांग्रेसका अहिंसाको मर्यादित रूपमें स्वीकार करना इस दलीलका पर्याप्त समर्थन करता है।

जहाँसे कुछ भी ऐतिहासिक प्रमाण मिलने शुरू हुए हैं, उस कालसे लेकर आजतकके जमानेपर नजर डालते हैं, तो हम देखते हैं कि मनुष्य अहिंसा-मार्गपर ही चलता आया है। हमारे पूर्वज एक-दूसरेको खा जाते थे। बादको वह शिकारपर गुजारा करने लगे एक दूसरेको खानेसे उन्हें घृणा होने लगी। इसके बाद शिकारपर जिन्दा रहनेसे भी उन्हें शर्म आयी। इसलिए मनुष्यने जमीन खोदना शुरू किया। वह जमीनसे अनेक प्रकारका भोजन प्राप्त करने लगा। उसने जंगलमें मंगल कर दिया। इधर-उधर भटकते हुए जिन्दगी बितानेके बजाय

उन्होंने एक जगह स्थिर होकर रहना पसन्द किया। गाँव और शहर बसाये। कौटुम्बिक भावना जाग्रत हुई, जिसने और आगे बढ़कर स्वाभाविक भावनाका रूप ले लिया। यह सब उत्तरोत्तर बढ़ती हुई अहिंसाकी निशानियाँ है। हिंसा वृत्ति धीरे-धीरे कम होती गयी। अगर ऐसा न होता, तो जिस तरह बहुतसे निचले वर्जेके प्राणियोंका लोप हो गया है, उसी तरह मनुष्य जाति भी आजतक खत्म हो गयी होती।

जो अनेक पैगम्बर और अवतार हो गये हैं, उन्होंने भी न्यूनाधिक मात्रामें अहिंसाका ही प्रवर्त्तन किया है। किसीने हिंसाका प्रचार करनेका दावा ही नहीं किया। करे भी कैसे? हिंसाका प्रवर्तन करना ही क्या था? पशुरूपमें तो मनुष्य हिंसक ही है। आत्माके रूपमें ही वह अहिंसक है। जब मनुष्यको आत्माका भान होता है, तब वह हिंसक रह ही नहीं सकता। या तो वह अहिंसा सीख जायगा, या नाशको प्राप्त होगा। इसीलिए पैगम्बरोंने, अवतारोंने, सत्य, ऐक्य, भ्रातृभाव, संयम, न्याय इत्यादिका उपदेश दिया है। तो भी हिंसा आज तक रही है, और वह भी इस हदतक कि पत्र-लेखकके जैसा विचारशील व्यक्ति भी हिंसाको ही अन्तिम उपाय मानता है। मगर जैसा हमने ऊपर बताया है, इतिहास और अनुभव उसके विरुद्ध है।

अगर हम इतना स्वीकार कर लें कि आजतक अहिंसा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी है, तो उससे अनायास ही यह मान्यता सिद्ध होती है कि उसे आगे बढ़ते ही जाना है। इस जगतमें कोई वस्तु स्थिर नहीं है। सब कुछ गतिमान है। आगे न बढ़े तो पीछे गिरना ही है। गति चक्रके बाहर कोई जा नहीं सकता। उसके बाहर तो एक ईश्वर ही है, यदि है तो।

आज जो युद्ध चल रहा है, उसे हिंसाकी पराकाष्ठा कहा जा सकता है। मगर मेरी दृष्टिसे तो यह हिंसाकी होली है। लोगोंमें अहिंसाकी जितनी कद्र आज है, उतनी कभी नहीं थी, यह मैं तो देख ही रहा हूँ। और जितने प्रमाण पश्चिमसे मेरे पास आते रहते हैं, वह भी यही बताते हैं। ऐसी शुभ घड़ीमें कांग्रेसने जैसी-तैसी भी अहिंसाकी शरण ली है। लेखकको और उनके जैसे दूसरे सशंक लोगोंको शंका छोड़ कर, श्रद्धाके साथ इस अहिंसा यज्ञमें कूद पड़नेका मैं निमन्त्रण देता हूँ।

"देखो ना, मोती निकालनेवाला मरजीवा मोती निकालनेके लिए समुद्रमें डुबकी लगता है।

"देखो ना, मृत्युके मुँहमें जाकर वह मोतियोंकी मुट्ठी भरकर अपने हृदयकी पीड़ा मिटाता है:

"किनारेपर खड़े तमाशबीनके हाथ एक कौड़ी भी नहीं आती। प्रेम-पंथ पावककी ज्वाला है, उसे देखकर मनुष्य पीछे भागता है, पर जो उसके अन्दर चला गया है, उसे तो महा-सुख ही मिलता है; जलता तो देखनेवाला है।"

हरिजन-सेवक
१० अगस्त, १९४०

पूर्ण अहिंसावादी क्या करे?

"प्रश्न—आप चाहते हैं कि हरएक प्रान्तमें पूर्ण अहिंसामें विश्वास रखनेवाले लोग हों। इस हालतमें क्या उनका संगठन होना कठिन न होगा? या आप मानते हैं कि अहिंसा अकेली ही चल सकती है?

उत्तर—पूर्ण अहिंसाको तो न वाणीकी आवश्यकता है, न लेखनीकी, और अगर इन दोनों बलोंकी आवश्यकता न हो, तो संघ-बलकी आवश्यकता हो ही नहीं सकती। अहिंसामयी स्त्री या पुरुषका संकल्पमात्र काम करता है। यह सत्य मेरी कल्पनामें आता है। मैंने ऐसा शास्त्रोंमें पढ़ा है। मगर इसका अनुभव बहुत कम है। इतना कम कि मैं किसीके आगे उसे प्रमाणरूप माननेको नहीं रख सकता। इसलिए मैंने सुसंगठित अहिंसक दलकी इच्छा और आशा रखी है। साथ ही, मैंने यह भी कहा है, कि हरएक प्रान्तमें इने-गिने पूर्ण अहिंसा भक्त हों तो उनमें अकेले खड़े रहनेकी शक्ति होनी ही चाहिए। अर्थात् सबके सब सैनिक हों और सेनापति भी। ऐसे अहिंसकोंका संगठन हो, तो अहिंसाके बारेमें आज जो अविश्वास फैल रहा है, वह तुरत दूर हो जाय और कांग्रेस आसानीसे पूर्ण अहिंसाको माननेवाली संस्था बन जाय।

हरिजन-सेवक
१७ अगस्त, १९४०

नैतिक मदद

एक भाई लिखते हैं:—

"लड़ाईके प्रारंभमें आपने ब्रिटेनको मदद देनेकी बात की थी। इसका अर्थ सब लोग नहीं समझे। आपने शायद उसका अर्थ स्पष्ट किया भी नहीं है। मैं 'हरिजन-बन्धु' हमेशा पढ़ता हूँ। मगर उसमें मैंने नैतिक मददका स्पष्ट अर्थ नहीं देखा। अनेक लोग अनेक अर्थ किया करते हैं। यु० प्रा० स०की बैठकमें खुद नेता लोग ही कहते थे कि बापू स्वयं नैतिक मदद देनेको तैयार थे तो कांग्रेसने नया प्रस्ताव पास करके उससे ज्यादा क्या देनेको कहा है? कांग्रेस तो ज्यादा लेकर थोड़ा देनेवाली है। बापू तो ऐसे हैं कि सब कुछ दे दें। अगर लड़ाईमात्र ही अनीतिमय है, तो उसे नैतिक मदद या आशीर्वाद भी कैसे मिल सकता है? महाभारतमें जो मदद भगवान कृष्णने अर्जुनको दी थी, वह नैतिक या शस्त्रबलसे भी अधिक नाशक क्या नहीं थी?"

अंग्रेजीमें तो मैंने नैतिकबलकी मर्यादा बतायी थी। हो सकता है, वह हरिजन-बन्धुमें पूरी तरह न आयी हो। अंग्रेजी लेखोंमें बहुत अध्याहार रखा जाता है। गुजराती अनुवादमें इसे छोड़ा जाय तभी स्पष्ट अर्थ निकल सकता है। नैतिक मददका मोटा अर्थ यहाँ पर यह था कि उसे प्राप्त करनेके लिए अंग्रेजोंको कुछ करना पड़ता था। इसे सौदा नहीं कहा जा सकता। ऐसी हालतमें अंग्रेज जो कुछ हिन्दुस्तानको देते, वह किसी माँगके उत्तरमें दिया हुआ न होता। मान लीजिये कि मेरे भाईके पास नैतिक बल है, जो उसने तपश्चर्या करके इकट्ठा किया है। मान लीजिये कि मुझे उसमेंसे कुछ चाहिए। अपने भाईसे माँगनेसे वह मुझे मिलनेका नहीं है। भाई तो देनेको तैयार है। मगर मुझमें लेनेकी योग्यता ही न हो तो मैं कहाँसे लूँ? नैतिक बल देनेसे दिया नहीं जा सकता, लेनेसे लिया जा सकता है जिसमें लेनेकी योग्यता हो, वह उसे लूट ले।

काँग्रेसके पास ऐसा नैतिक बल है। काँग्रेसने सत्य और अहिंसाका मार्ग स्वीकार किया है, यह उसकी तपश्चर्या है। उसमेंसे उसे जगत-मान्य प्रतिष्ठा मिली है। काँग्रेस यदि अंग्रेज सरकारको आशीर्वाद दे, तो जगत मानेगा कि अंग्रेज सरकारकी लड़ाईमें न्याय है। हिन्दुस्तानके करोड़ों लोग, जिनपर काँग्रेसका काबू है, वह भी मानने लगेंगे कि न्याय अंग्रेज सरकारके पक्षमें है। इस सारे-के-सारे सिलसिलेमें काँग्रेसको कुछ देनेको नहीं रहता। अंग्रेज सरकार अपनी कृतिसे इस हदतक नैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकती है। यद्यपि इसमें काँग्रेस एक भी आदमी या एक भी पैसेकी मदद नहीं देती, तो भी उसकी नैतिक मदद, उसका आशीर्वाद अंग्रेज सरकारकी जीतके लिए निर्णयात्मक योग दे सकता है। यह मेरा अनुमान है। काँग्रेसके पास नैतिक बल है, यह भी तो मेरी केवल मान्यता ही है न? हो सकता है कि दर-असल काँग्रेसके पास ऐसा बल न हो। मगर यहाँपर यह सवाल नहीं उठता।

मगर यह अवसर तो बीत गया, ऐसा कहा जा सकता है। काँग्रेस यह मार्ग ग्रहण न कर सकी। यह ऐसी चीज नहीं थी, जो कृत्रिम रीतिसे की जा सके। उसके लिए सत्य और अहिंसाकी शक्तिमें जीता-जागता विश्वास होना चाहिए। काँग्रेसका बड़ा से बड़ा गुण यह है कि जो चीज अपने पास न हो, उसका ढोंग या दावा काँग्रेसने कभी नहीं किया, इसलिए काँग्रेसके प्रस्ताव दिप उठते हैं और उनमें बल रहता है।

काँग्रेसका हालका प्रस्ताव, जो बल प्रदान करने की इच्छा प्रकट करता है, वह तो मुख्यतः आर्थिक है। यह सौदा भी है। मेरे कहनेका यह आशय बिलकुल नहीं कि इसमें कोई बुराई है या अनीति है। काँग्रेसने जो प्रस्ताव पास किया है, वह काँग्रेसके बहुमतकी मनोवृत्ति बताता है, इसलिए उसे शोभा देता है। मगर इससे काँग्रेसके पास जो प्रतिष्ठा थी, या मानी जाती थी वह गयी है सही। बहुतसे काँग्रेसवादियोंने यह निश्चय भले किया कि स्वराज्य हम अहिंसा-मार्गसे लेंगे, पर उसका यह अर्थ नहीं किया जा सकता कि अहिंसा-मार्गसे उसकी रक्षा भी करेंगे। जगतने तो शुरूसे माना है कि काँग्रेसने दुनियाको युद्ध-नाबूद करनेका सुवर्ण-मार्ग बताया है। किसीकी यह मान्यता नहीं थी, कि काँग्रेस महान् ब्रिटिश सल्तनतके हाथसे सत्ता तो अहिंसा द्वारा लेगी, मगर उसकी रक्षा उस मार्गसे नहीं करेगी।

भगवान कृष्णकी मदद मेरी दृष्टिसे नैतिक नहीं कही जा सकती। क्योंकि उनके पास तो सेना थी। वह खुद युद्धकी कलाके ज्ञाता थे। दुर्योधनने मूर्खता की जो कृष्णकी सेना ली। पर अर्जुनको जो चाहिए था, सो मिला—अर्थात् सेनापतिकी कला। इसलिए महाभारतका स्थूल अर्थ किया जाये तो भगवान कृष्णका बल अवश्य अधिक नाशक था। क्योंकि कृष्णके युद्ध चातुर्यसे दुर्योधनकी अट्ठारह अक्षौहिणी सेनाका नाश पांडवोंकी सात अक्षौहिणी सेनासे हुआ। मगर यह सभी जानते हैं कि मैंने महाभारतको स्थूल काव्य नहीं माना। स्थूल युद्धका वर्णन करके कविने व्यक्ति और समष्टिमें सत्य और असत्य, हिंसा और अहिंसा, नीति और अनीतिके बीच जो सनातन युद्ध चल रहा है, उसका वर्णन किया है। स्थूल दृष्टिसे इस काव्यको देखा जाये, तो व्यास भगवानने यह सिद्धकर बताया है कि शस्त्र-बलके युद्धमें जीतनेवाला भी हारेके जैसा ही होता है। असंख्य योद्धाओंमेंसे आखिर सात ही जीवित बचते हैं। और उन सातका भी क्या हाल हुआ, उसका हूबहू चित्र महाभारतकारने अंकित किया है। यह भी बताया है कि शस्त्र-बलके युद्धमें दोनों पक्ष छल-कपट करनेवाले ही हैं। प्रसंग आने-पर युधिष्ठिर—जैसोंको भी असत्य का आश्रय लेना पड़ा था।

अब सिर्फ पत्र-लेखकके एक सवाल पर गौर करना बाकी रहता है। अगर युद्ध-मात्र अनीति-मय है, तो उसमें किसीको भी नैतिक मदद या आशीर्वाद कैसे दिया जा सकता है? मैं मानता हूँ कि युद्धमात्र नीतिके विरुद्ध है। मगर दोनों पक्षोंके हेतुपर गौर करें, तो हो सकता है कि एकका हेतु शुद्ध हो और दूसरेका अशुद्ध। जैसे मान लीजिये कि 'अ' 'ब' का मुल्क छीनना चाहता है। दोनों ही तलवारसे लड़ते हैं। यद्यपि मैं तलवारके बलको नहीं मानता, तो भी 'ब' अवश्य मेरी मदद और आशीर्वादका अधिकारी है।

हरिजन-सेवक
१७ अगस्त, १९४०



शूरवीरोंकी अहिंसा

नीचे लिखा प्रश्न पूछा गया है :—

"आप कहते हैं कि अहिंसा शूरवीरोंकी है, कायरोंके लिए नहीं। लेकिन मेरी मान्यताके अनुसार के हिन्दुस्तानमें शूरवीर हैं ही नहीं। शायद हम शूरवीर होनेका दावा करें, मगर जगत कैसे इस दावेको स्वीकार कर सकता है, क्योंकि सारा जगत जानता है कि हिन्दुस्तानके पास शस्त्र हैं ही नहीं, इसलिए वह अपनी रक्षा आप करनेके लिए अशक्त है। तो फिर शूरवीरों-की अहिंसा सीखनेके लिए हमें क्या करना चाहिये?"

आपका यह मानना कि हिन्दुस्तानमें शूरवीर हैं ही नहीं, ठीक नहीं है। विवेकियोंने

एकबार कायर ठहरा दिया, इसलिए हम भी अपने आपको कायर मानने लगे, यह हमारे लिए शर्मकी बात है। बहुत बार ऐसा होता है कि आदमी जैसा अपने-आपको मानता है, वैसा ही बन जाता है। अगर मैं हमेशा यह रटता रहूँ कि अमुक काम मुझसे हो ही नहीं सकता, तो संभव है, कि आखिरमें वह काम करनेके अयोग्य बन जाऊँ। इससे उलटा, अगर मैं यह विश्वास रखूँ और मानूँ कि मैं यह करूँगा ही, तो आरंभमें मुझमें उसकी शक्ति न हो, तो भी उसे मैं प्राप्त कर लूँगा। फिर आप कहते हैं कि संसार हमें आज कायर मानता है। यह भी सही नहीं है। सत्याग्रहकी लड़ाईके बाद जगतने हिन्दुस्तानको कायर मानना छोड़ दिया। पश्चिममें कांग्रेसकी प्रतिष्ठा पिछले २० वर्षोंमें अधिक बढ़ी है। हमारे पास शस्त्र नहीं हैं, तो भी हम स्वराज्य प्राप्त करनेकी आशाका सेवन कर रहे हैं और हम स्वराज्यके बहुत नजदीक पहुँच गये हैं। जगत यह सब आश्चर्यचकित होकर देखा करता है, और हमारी हलचलमें जगतको शान्तिकी और जगतको रक्तकी वैतरणीमेंसे उबारनेकी आशाकी किरणें देखता है। दुनियाका अधिकांश यह मानने लगा है कि जगतमें वैर-भावको मिटाना है, और खूनी लड़ाइयाँ बन्द होनी है तो यह कॉंग्रेसकी अपनायी हुई नीति द्वारा ही होगा। इसलिए आपकी शंका और डरको स्थान नहीं है।

अब आप देख सकते हैं कि हिन्दुस्तानके पास शस्त्र नहीं हैं यह चीज अहिंसा-मार्गमें विघ्न रूप नहीं है। यह बात सच है कि अंग्रेज सरकारने बलात्कारसे हमारे शस्त्र छीनकर महादोष और अन्याय किया है। पर अगर ईश्वर प्रसन्न हो या यूँ कहिये कि हममें उस अन्यायका भी उपयोग कर सकनेकी बुद्धि हो, तो अन्यायमेंसे भी लाभ निकल सकता है। यही हिन्दुस्तानके बारेमें हुआ है।

अहिंसाके शिक्षणके लिए शस्त्रोंकी आवश्यकता रहती ही नहीं। अगर शस्त्र हों भी तो वह फेंक देने चाहिए, जैसे कि खां साहबने फेंक दिये हैं। जो लोग यह कहते हैं कि अहिंसा सीखनेके पहले हिंसा सीखनी चाहिये, उनकी बात तो 'पापी ही पुण्यवान बन सकता है' यह कहने जैसी हुई।

जैसे हिंसाकी तालीममें मारना सीखना जरूरी है, इसी तरह अहिंसाकी तालीममें मरना सीखना पड़ता है। हिंसामें भयसे मुक्ति नहीं मिलती, किन्तु भयसे बचनेका इलाज ढूँढनेको रहता है। अहिंसामें भयको स्थान ही नहीं। भयमुक्त होनेके लिए अहिंसाके उपासकको उच्च कोटिकी त्यागवृत्ति विकसित करनी चाहिए। जमीन जाये, धन जाये, शरीर भी जाये, इसकी वह परवाह ही न करे। जिसने सब प्रकारके भयको नहीं जीता, वह पूर्ण अहिंसाका पालन नहीं कर सकता। इसलिए अहिंसाका पुजारी केवल ईश्वरका ही भय रखे और दूसरे सब भयोंको जीत लेवे। ईश्वरकी शरण ढूँढनेवालोंको आत्मा शरीरसे भिन्न है यह भान होना ही चाहिये और आत्माका भान होते ही क्षणभंगुर शरीरका मोह उतर जाता है। इस तरह अहिंसाकी तालीम, हिंसाकी तालीमसे एकदम उलटी होती है। बाहरकी रक्षाके लिए हिंसाकी जरूरत पड़ती है, आत्माकी, स्वमानकी रक्षाके लिए अहिंसाकी आवश्यकता है।

ऐसी अहिंसा घरमें बैठे-बैठे नहीं सीखी जाती। उसके लिए साहसकी आवश्यकता है। हम भयमुक्त हुए है या नहीं, यह जाननेके लिए हमें जंगलमें मंगल करना सीखना चाहिए। श्मशानमें भटकना चाहिए, शरीरका दमन करके, अनेक कष्ट सहन करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये। दो आदमियोंको लड़ते देखकर जो मनुष्य कांपने लगता है या भाग जाता है वह अहिंसक नहीं, कायर है। ऐसे झगड़ोंको रोकनेमें अपनेको कुर्बान कर जोखिम उठाकर, अहिंसक अपनी परीक्षा करता है। संक्षेपमें, अहिंसककी बहादुरी हिंसककी बहादुरी से बहुत आगे जाती है। हिंसककी निशानी उसके हथियार हैं, वह फिर भाला हो, तलवार हो, बर्छी हो चाहे तमंचा, अहिंसकका हथियार तो 'रामनाम' है। इतना लिखकर मैंने अहिंसा सीखनेवालों को कोई पाठ्यक्रम नहीं दिया, मगर इससे पाठ्यक्रम बनाया जा सकता है।

ऊपरके लेखसे आप देख सकेंगे कि इन दो प्रकारकी वीरताओंमें कोई समानता ही नहीं है। एकका अन्त है, दूसरेका अन्त ही नहीं है। 'सेरके लिए सवा सेर' का न्याय अहिंसा पर लागू होता ही नहीं। अहिंसा अजेय है। ऐसा बल हम प्राप्त कर सकेंगे या नहीं, इस तरहकी शंका मनमें न लाइये। पिछले बीस वर्षका इतिहास हमें विश्वास दिलानेके लिए पर्याप्त होना चाहिए।

हरिजन-सेवक
३१ अगस्त, १९४०



कुछ जरूरी प्रश्नोत्तर

एक लक्षण

सवाल—आप कहते हैं कि अहिंसकको सब कुछ खो देनेके लिए तैयार रहना चाहिये। चूंकि इनका संबन्ध आत्मासे नहीं है, किन्तु शरीरसे है, अगर हम सब कुछ खो देनेको तैयार रहें, तो फिर हिंसक या अहिंसक युद्धकी आवश्यकता ही क्या है? युद्ध तो इसलिए करना पड़ता है न कि हम अपने धन-जनको आक्रमणकारीके हमलेसे बचाएँ! साथ ही साथ आप यह भी कहते हैं कि यदि अपने धन-जनकी हिफाजतकी इच्छा हमारे मनमें होगी, तो हमारी आत्मा अशुद्ध हो जायगी। इन दोनोंका मेल कैसे होगा?

उत्तर—आपका प्रश्न बहुत अच्छा है। मैंने जो लिखा है वह अहिंसक सेनाके लिए है। हिन्दुस्तानको ही लीजिये। करोड़ों लोग अहिंसक सेनामें भर्ती नहीं होंगे। लेकिन उनकी रक्षाके लिए जो सत्याग्रही बनेंगे, उनको सर्वस्वका मोह छोड़ना होगा।

धर्म संकट

प्र०—मैं एक बार स्टेशनसे दूर रेलके नजदीकसे जा रहा था। मैंने एक नवयुवकको ठीक रेलके पास खड़े देखा। मुझे शक हुआ कि वह रेलसे कटकर आत्महत्या करना चाहता है। इसलिए मैंने उसे वहाँसे हट जानेको कहा। वह थोड़े ही मेरी माननेवाला था? मैंने बहुत मिन्नत की, लेकिन उसने एक न सुनी। मैंने उसकी जान बचानेका निश्चय किया। मैंने उससे लड़ाई की, उसे कुछ खून निकला। मुझे थकान मालूम होने लगी। लेकिन रेलके चले जानेतक मैंने उसे पकड़े रखा। अगर मैं नहीं लड़ता तो वह मरनेवाला था ही। मैंने क्या किया—हिंसा या अहिंसा? जब मैंने लड़ाई शुरू की, तब मुझे कुछ ख्याल नहीं था कि मैं हिंसा कर रहा हूँ या अहिंसा, और अब भी कुछ निर्णय नहीं कर सकता हूँ।

उत्तर—अच्छा ही हुआ कि आपने उस समय हिंसा अहिंसाका ख्याल नहीं किया। जगत इस तरह नहीं चलता है। अभ्याससे हममें एक आदत हो जाती है और उसके मुताबिक मौका आनेपर हम चलते हैं। वैसा ही आपने किया है। मुझे तो कुछ शक नहीं कि आपका वह कार्य अहिंसक और बहादुरीका था। आपने उस नवयुवककी जान बचायी, इसलिए आप उसके सच्चे दोस्त सिद्ध हुए। जैसे एक सर्जन अपने मरीजकी जान बचानेके लिए मरीजको दर्द होते हुए भी चीर-फाड़ करके उसे बचाता है, ऐसा आपने किया। धन्यवाद!

हरिजन-सेवक
७ सितम्बर, १९४०



हुल्लड़में अहिंसा

एक दोस्त लिखते हैं—"मैं नहीं समझ सकता कि हुल्लड़ जैसे प्रसंगोंमें अहिंसा कैसे असरकारक परिणाम ला सकती है। आपही ने कहा है कि बलिदान करनेवाला जिसके सम्बन्धमें आया हो उसी पर उसके बलिदानका असर भी होगा। अब हुल्लड़ के प्रसंगपर जो गुण्डे मारामारीके लिए निकलते हैं वह मरनेवालेके संबन्धमें तो कभी आये ही नहीं होते। ऐसी हालतमें उसे बलिदानवालेको मारनेसे कैसे हिचकिचाहट होगी। उसके सामने यह सवाल ही नहीं पैदा हो सकता है कि मैं किसको मार रहा हूँ, किस कारणसे मारता हूँ?"

यह प्रश्न बहुत विचार करने योग्य है। पत्र लिखनेवाले भाई खुद अपनी जिन्दगीको खतरेमें डालकर हुल्लड़में कूद चुके हैं। मैं इस प्रश्नके बारेमें आगे भी लिख चुका हूँ लेकिन

यह एक ऐसी चीज है कि जो बार-बार दुहरायी जा सकती है। दुःखकी बात तो यह है कि कांग्रेसके सभ्योंका ध्यान शान्ति द्वारा हुल्लड़का उपाय ढूँढ़नेकी तरफ गया ही नहीं। उन्होंने सरकारके सामने लड़नेतक ही अपनी अहिंसक शक्ति बढ़ायी है। मैं बता चुका हूँ कि जो अहिंसा यहीं तक आकर अटक जाती है, वह अहिंसा कही ही नहीं जा सकती है। निःशस्त्र प्रतीकार हम उसे भले कहें। परन्तु यह तो एक प्रकारकी सरकारको तंग करनेकी युक्ति ही कहलायेगी। दूसरे शब्दोंमें, यह एक तरहकी हिंसा ही ठहरी। हुल्लड़को शान्त उपायोंसे रोकनेके लिए दिलमें सच्ची अहिंसा होनी चाहिए। गुण्डोंसे भी प्रेम होना चाहिये। ऐसा करनेकी वृत्ति एका-एक नहीं आ सकती। यह तो कोशिश करनेसे ही आती है। जब हुल्लड़ न हो, उस समय कोशिश की जा सकती है। जहाँ हम रहते हैं वहां होनी चाहिये। जिन लोगोंको गुण्डा माना जाता है उनकी हमें जान-पहचान करनी चाहिये। शान्तिका साधक अपने आस-पासके समाजके किसी अंगको ऐसे रहने न देगा। सबके साथ मीठा सम्बन्ध बाँधेगा, सबकी सेवा करेगा। गुण्डे लोग कहीं आकाशसे तो नहीं उतरते। भूतकी तरह जमीनके पेटसे भी नहीं निकलते। उसकी उत्पत्ति समाजकी कुव्यवस्थासे ही होती है। इसलिए समाज उसके लिए जिम्मेदार है। गुंडोंको समाजका मर्ज या एक किस्मकी सड़ान समझना चाहिए। ऐसा मानकर उस मर्जके कारण ढूँढ़ना चाहिए। कारण हाथ लगनेपर इलाज फिर किया जा सकता है। अबतक तो इस दशामें प्रयत्न तक भी नहीं किया गया। जागे तबसे सुबह इस सुभाषितके अनुसार यह प्रयत्न अब शुरू कर देना चाहिए। इस बारेमें अब कोशिश शुरू हो गयी है। सब अपनी २ जगह कोशिश करें। ऐसी कोशिशोंकी सफलतामें ही इस सवालका जवाब समाया है।

हरिजन-सेवक
१४ सितम्बर, १९४९



अहिंसामें व्यायामका स्थान

व्यायामशालाओंमें, अखाड़ेमें, तलवार, भाले, जमैये, आठापाटा इत्यादिको स्थान होता है। कांग्रेसके स्वयंसेवकोंको कई प्रकारकी कवायदें सिखायी जाती हैं, और उसके अलावा ऊपर बताई हुयी तालीम भी कई जगह दी जाती है। इस विषयमें मुझे कुछ पत्र मिले हैं, लेखक अहिंसाकी दृष्टिसे इस विषयमें मेरे ख्यालात जानना चाहते हैं। विषयकी चर्चा शुरू करनेके पहले एक महत्वकी बात कहना आवश्यक समझता हूँ। हिंसक लश्करकी भर्तीमें आनेवालोंकी सिर्फ शारीरिक परीक्षा की जाती है। उसमें बूढ़े, स्त्री और छोटे लड़के नहीं लिये जायेंगे। वैसे ही रोगियोंको भी नहीं ले सकेंगे और ऐसी मर्यादा हिंसक लश्करके लिए आवश्यक भी है।

लेकिन अहिंसक संघके लिए नियम बिल्कुल उल्टा है। उसमें भर्ती होनेवालोंके शरीरकी नहीं, बल्कि दिलकी परीक्षा होती है, इसलिए उस संघमें महारोगवाले, बूढ़े, स्त्री, और नवजवान, लूले, लंगड़े और अंधे भी शामिल हो सकते हैं और विजय पा सकते हैं। मारनेकी शक्ति पानेके लिए लम्बी तालीम लेनी पड़ती है। मरनेकी शक्ति तो जिनकी इच्छा होती है उनमें आ ही जाती है, दस बारह सालका लड़का पूर्ण सत्याग्रही हो सकता है। ऐसे कई दृष्टान्त भी मिलते हैं। लेकिन दस बारह सालका लड़का हिंसक लश्करमें आ ही नहीं सकेगा। चाहे उसकी कितनी ही तीव्र इच्छा हो, उसकी शारीरिक संपत्ति अपूर्ण होनेके कारण लश्करमें भर्ती नहीं हो सकेगा। लेकिन कोई ऐसा न समझे कि चूँकि अहिंसक संघमें महारोगी और बालकको भी स्थान हो सकता है, इसलिए सत्याग्रहीको शारीरिक संपत्तिका कुछ ख्याल ही नहीं करना पड़ता है। अहिंसामें ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जो कि मजबूत शरीरवाले ही कर सकें। इसलिए यह सोचना अति आवश्यक है कि अहिंसक मनुष्यको किस प्रकारकी शारीरिक तालीम लेनी चाहिए।

जो नियम हिंसक लश्करके लिए है, उनमें से कुछ ही अहिंसक लश्करको लागू हो सकेंगे। हिंसक लश्करके पास तलवार इत्यादि सिर्फ दिखाने या शोभाके लिए नहीं होगा। लेकिन उसका उपयोग दूसरेके प्राणलेनेके लिए होगा। अहिंसक संघवालोंको ऐसे हथियारोंका उपयोग न होनेके कारण वे उसको बोझ समझेंगे, और हो सके तो उसमेंसे खेती इत्यादिमें उपयोग हो ऐसा सामान उत्पन्न करेंगे; उसको शस्त्रके रूपमें देखनेमें उन्हें शर्म लगेगी। हिंसक सिपाहीको शिकार करना सिखाकर हिंसाकी तालीम दी जायगी। अहिंसकको न शिकार करनेका समय ही मिलेगा, न इच्छा होगी। अहिंसककी तालीम बीमारोंकी सेवा करनेकी, अपने जानकी चिन्ता न करते हुए संकटमें पड़े हुए लोगोंको बचानेकी, जहाँपर चोर-डाकूका भय हो वहाँ पहरा देनेकी और उनको ऐसा न करनेको समझाते-समझाते मर मिटनेकी होगी। हिंसक और अहिंसकका लिबास भी अलग ही होगा। हिंसक अपनी रक्षाके कारण बख्तर पहनेगा, सामनेवालोंपर प्रभाव डाल सकें ऐसी पोशाक पहनेगा। अहिंसकको न किसीके साथ लड़ना है, न किसीपर प्रभाव डालना है। इसलिए उसका पोशाक सादा और गरीबोंसे मिलती-जुलती रहेगी। उसका उपयोग सिर्फ शरीर ढकनेका और धूप जाड़ोंसे बचनेका होगा। हिंसक सिपाहीका रक्षक सिर्फ उसके शस्त्र ही होंगे---चाहे वह मुँहसे ईश्वरका नाम लेता भी हो, उसको अपने शस्त्रकी खातिर करोड़ों रुपयेका खर्च करनेमें कभी हिचकिचाहट नहीं होगी। अहिंसकका एक ही, पहला और आखिरी शस्त्र ईश्वरके प्रति पूर्ण–अटूट विश्वासका होगा। साफ है कि हिंसककी और अहिंसककी मनोवृत्तिमें आसमान और जमीनका सा फर्क है।

हिंसक चौबीसों घन्टे अपने शत्रुको मारने, मरवानेकी युक्ति सोचता रहेगा और ईश्वरकी जो प्रार्थना करता होगा वह भी अपने दुश्मनके नाश करनेकी। अंग्रेजी जनताका गीत यहाँ सोचने लायक है। उसमें अंग्रेजी राजाकी रक्षाके लिए ईश्वरसे प्रार्थना की गयी है। दुश्मनको धोखेबाज गिना है और ईश्वरसे उसका संहार मांगा है। यह गीत लाखों अंग्रेज एक सुरमें ऊँचे स्वरमें खड़े होकर शानसे गाते हैं। यदि ईश्वर दयावान

हो तो ऐसी प्रार्थना कैसे सुने ? लेकिन गानेवालेके मनपर तो उसका असर होता ही है और लड़ाईके समय पर तो यह गीत गानेवालोंके दिलोंमें दुश्मनके प्रति घृणा और रोष भभक उठाते हैं। हिंसक लड़ाई जीतनेकी शर्त ही यह है कि दुश्मनके प्रति गुस्सा प्रतिदिन बढ़ाना। अहिंसकके शब्दकोषमें कोई बाह्य दुश्मन ही नहीं है, लेकिन जो दुश्मन माना जाता होगा, उसके प्रति भी मनमें तो दया-प्रेम ही होंगे। वह ऐसा मानता होगा कि कोई भी मनुष्य जान बूझकर दुष्ट नहीं होता। हरेक मनुष्यमें योग्यायोग्य सोचनेके शक्ति है ही; और वह शक्ति पूरी विकसे तो अहिंसामें ही उसका परिवर्तन हो जाये। इसलिए अहिंसक मनुष्य ईश्वरसे यही मांगेगा कि दुश्मनको सुबुद्धि दे और उसका भला करे। उसकी निरन्तर प्रार्थना यह होगी कि खुदकी दयावृत्ति बढ़े और आत्मबल भी बढ़े, ताकि वह हँसते मुँह मौतकी भेंट कर सके।

ऐसे दोनोंकी मनोवृत्तिमें महान भेद होनेके कारण दोनोंकी शारीरिक तालीम भी अलग ही होगी।

लश्करी तालीम तो हम सब कम-ज्यादा मात्रामें जानते हैं। अहिंसाकी तालीम और प्रकारकी ही होती है। उस तरफ हमारा ध्यान ही नहीं गया है। उस प्रकारकी तालीम पुराने जमानेमें थी या नहीं, उसकी हमने जाँच नहीं की है। मेरा मानना है कि वैसी तालीम पूर्वकालमें दी जाती थी, और आज भी भले टूटी फूटी सही, कहीं कहीं दी जाती है। अनेक प्रकारके हठयोग-प्रयोग उसकी तालीम हैं। उसमें जो शरीर-शिक्षा है, उसमें शरीरका आरोग्य, शरीर सुदृढ़ बनाना, ठंड-धूप सहनेकी शक्ति बढ़ाना, शरीरकी चपलता बढ़ाना, इसका समावेश होता है। इसका प्रयोग और उसमें क्या-क्या शक्ति भरी हुई है, उसकी शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार जाँच करनेकी कोशिश कुवलयानंदजी कर रहे हैं। आज उनकी प्रगति कहाँतक पहुँची है और कुवलयानन्दजी अपने प्रयोग अहिंसाको ध्येय समझकर कर रहे हैं या नहीं, यह मैं नहीं जानता। यहाँ हठयोगके प्रयोगका उल्लेख करके मेरा प्रयोजन सिर्फ प्राचीन वस्तुकी ओर ध्यान खींचनेका ही है। मेरा मानना है कि उसमें सुधार और वृद्धिकी गुंजाइश है। मैं नहीं जानता कि हठयोगके आचार्योंके सामने सामाजिक अहिंसाकी कल्पना थी या नहीं। ज्यादातर ऐसी क्रियाओंके पीछे व्यक्तिगत मोक्षकी भावना ही होती है। आसनादिका प्रयोजन शरीरको कसकर मनोवृत्तिपर काबू डालनेका था। आज हमारे सामने सामाजिक अहिंसाका सवाल है। वह सब धर्मिओंपर लागू पड़ती है, इसलिए जो नियम बनें वह भी ऐसे होने चाहिए जो अहिंसाको माननेवाले सब बर्दाश्त कर सकें और यहाँ कल्पना अहिंसक लड़ाई लड़नेवालोंका यानी सत्याग्रहियोंका संघ स्थापित करनेकी है। इसलिए पुराने जमानेमें जो कुछ हुआ, उसे मार्ग-दर्शक समझकर आज नये नियम बनने चाहिएं।

जिन चीजोंकी सत्याग्रहियोंको आवश्यकता है वह अब सोचें। यदि सत्याग्रही पूर्ण निरोगी नहीं होगा तो शायद पूर्ण रूपसे वह निडर नहीं बनेगा। उसमें दिन-रात एक ही पैर खड़े रहनेकी शक्ति होनी होगी। ठंड-धूप, बारिश सहन करते हुए भी वह बीमार नहीं होगा। जहाँ भय हो, जहाँ आग लगी हो वहाँ दौड़ जानेकी शक्ति उसमें होनी चाहिए। निर्जन जंगलमें, स्मशानमें, निडरपनसे अकेले घूमनेकी शक्ति होनी चाहिये। चाहे कितनी मार पड़े,

घायल हो जाय, भूखों मरे तब भी वह चूं-चा नहीं करेगा, न घबड़ायेगा और न अपना स्थान छोड़ेगा। दंगेमें मौका न मिले ऐसा होनेपर भी उसमें कूद पड़नेकी युक्ति और शक्ति सत्याग्रहीमें होनी चाहिए। कहीं आग लगी हो, और ऊपरकी मंजिलमें रहते हुए लोगोंको बचाना है तो ईश्वरका स्मरण करते-करते वहाँ पहुँच जानेकी इच्छा और शक्ति उसमें होनी चाहिए। नदीमें कहीं बाढ़ आयी हो और उसमें कोई डूबता हो, कोई कुएँमें गिरा हो तो उसको बचानेके खातिर कूद पड़नेकी शक्ति सत्याग्रहीमें होनी चाहिए।

इस फिहरिस्तको जितनी विस्तृत करना चाहें उतनी कर सकते हैं। सारांश मात्र इतना ही है कि जहाँ दुःख हो, वहां मदद करने दौड़ जानेकी, और चाहे हमें कितना ही दुःख कोई दे तब भी हँसते मुँह बर्दाश्त करनेकी शक्ति होनी चाहिए। जो मैंने लिखा है उसे जो हजम कर सके हैं, वह आसानीसे तालीमके नियम बना सकेंगे, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। इस तालीमके मूलमें ईश्वर-श्रद्धा है। यह न होनेपर सब प्रकारकी तालीम मौकेपर निकम्मी साबित होगी। कांग्रेसमें कई लोगोंको तो ईश्वरका नाम लेते शर्म आती है, कहकर मेरे वचनका कोई अनादर न करे। मैं तो सत्याग्रहके शास्त्रको मैंने जैसा जाना और अपनाया है उसीके अनुसार यह लेख लिख रहा हूँ। सत्याग्रहीका शस्त्र एकमात्र ईश्वर ही है, फिर चाहे उसे किसी नामसे पहिचाने, उसके बिना वह राक्षसी शस्त्र धारण करनेवालोंके सामने निर्बलसा प्राणी है। असंख्य लोग ऐसे ही दबकर चलते हैं। लेकिन जिसका एकमात्र ईश्वर ही रक्षक है, उसे बाहरी शक्ति चाहे कैसी भी भयंकर हो, झुका नहीं सकेगी।

जिस तरह ईश्वर-श्रद्धाकी आवश्यकता है, वैसे ही ब्रह्मचर्यकी भी है। बिना ब्रह्मचर्य न तो उसमें तेज होगा, न आत्मिक बल होगा और न निःशस्त्र होते हुए भी दुनियाके सामने खड़े रहनेकी शक्ति होगी। यहाँ मैंने ब्रह्मचर्यकी जो व्यापक व्याख्या की है वह भले न मानी जाय ब्रह्मचर्यके मानी सिर्फ वीर्य-रक्षा भले मानी जाय। कम खुराकसे और बिना बाहरकी मददसे जिसे जीवन-निर्वाह करना हो, उसे हर हालतमें वीर्य-संग्रह करना ही होगा। मनुष्यकी वह बड़ीसे बड़ी पूँजी है। जो उसका संग्रह कर सके, वह नित्य नया बल पाता रहेगा। जो जानते हुए या अनजानसे वीर्य खर्च करता है, वह आखिरमें निर्वीर्य बनेगा। उसमें जो बल होना चाहिए वह नहीं आयेगा। वह वीर्य-संग्रह कैसे किया जाय, यह मैं कई बार लिख चुका हूँ। पाठक उसे पढ़ें और उसपर अमल करें। जो आँखसे या स्पर्शसे भोग करता है, वह कभी वीर्य-संग्रह नहीं कर पायेगा और जिसको छप्पन तरहके भोगकी आदत है वह भी न कर सकेगा। बाढ़के सामने चलते न थकनेका संकल्प जैसे व्यर्थ जाता है वैसे ही नियमोंका अनादर करके वीर्य-संग्रह करनेकी आशा व्यर्थ जायगी और ऐसा प्रयत्न करनेवाला आखिरमें ब्रह्मचर्यका दावा न करते हुए मर्यादित विषय-तृप्ति करनेवालोंमें भी निर्बल सिद्ध होगा। विचारसे विषय करनेवालेकी कभी तृप्ति तो होती नहीं, इसलिए वह आखिरमें निर्वीर्य, मंदबुद्धि और पृथ्वीपर बोझ सा हो जायगा, ऐसे लोग कभी सत्याग्रही नहीं बन सकेंगे, वैसे ही जिनको धनकी लालसा है वे भी नहीं हो सकेंगे।

यह तो मैंने सत्याग्रहीकी शारीरिक तालीमकी बुनियादी बातें लिखी हैं, उसके मुताबिक कोई भी व्यायाम-रचना हो सकेगी।

अब तो इतना स्पष्ट होना चाहिए कि सत्याग्रही तालीममें तलवार, भाले, तमंचेको स्थान नहीं है। उसे देखनेकी या छूने तककी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उससे भी भयंकर शस्त्र आज मौजूद हैं। रोज नये-नये निकलते जाते हैं। चाहे कैसे भी भय—काल्पनिक या अनुभवमें आये हुए हों, उसको—पीजानेकी शक्ति जिसको बढ़ाना है, वह तलवारका अनुभव लेकर किस भयसे मुक्त होगा? ऐसा करते कोई भयमुक्त हुआ सुना नहीं है। महावीर आदि अहिंसा सीखे वह उनको शस्त्रका अनुभव ज्ञान था उस कारण नहीं। लेकिन होते हुए भी वह भयमुक्त हुए और उन्होंने अहिंसा सीखी। जरा सोचनेपर पता चलेगा कि जिसने हमेशा तलवारका आश्रय लिया है, उसको तलवार छोड़ना कठिन जंचेगा। हाँ, लेकिन जो शस्त्रधारी अपने शस्त्र फेंक देगा उसकी अहिंसा सच्ची और स्थायी बननाका संभव है सही, लेकिन उसका अर्थ यह कभी न किया जाय कि सच्चे अहिंसक बननेके लिए पहले शस्त्र धारण करना ही चाहिए। ऐसा अर्थ दूसरे क्षेत्रमें करें तो अर्थ यह निकलेगा कि डाकू ही साहूकार बन सकता है। रोगी ही निरोगी बन सकता है, विषयी ही ब्रह्मचारी बन सकता है। सच बात यह है कि हमें प्रस्तुत वायुमंडलके बाहर निकलकर तटस्थतासे सोचनेकी आदत ही नहीं है, और छिछला विचार करनेकी आदत होनेके कारण हम कुछ परिणाम पा नहीं सकते हैं और भ्रमजालमें फंसे रहते हैं।

हरिजन-सेवक
१२ अक्टूबर, १९४०



मेरी कोई नहीं सुनता?

ऊर्ध्व बाहुर्विरोम्येषः नैव कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च सधर्मः किं न सेव्यते॥

"मैं ऊंचा हाथ करके पुकारता हूँ, पर मेरी कोई सुनता नहीं! धर्ममें ही अर्थ और काम समाया हुआ है, ऐसे सरल धर्मका सेवन लोग क्यों नहीं करते हैं?"

बापूजी अणे पिछले शनिवारको दिल्लीमें कुछ मिनटके लिए मेरे पास आ गये थे। हम साथ-साथ काम कर रहे हों या विरोधी दिशामें जा रहे हों, बापूजी अणे मेरे प्रति हमेशा प्रेम भाव रखते हैं। इसलिये जब कभी उन्हें समय मिलता है राम राम कर जाते हैं, विचारोंका विनिमय कर जाते हैं, और कभी-कभी तो उनके पास श्लोकोंका जो भंडार भरा पड़ा उनमेंसे कुछ बानगी भी दे जाते हैं। दिल्लीमें जब वे मुझसे मिलने आये तब कांग्रेसमेंसे मेरे एकदम निकल जानेका उन्होंने कुछ विरोध सा किया, मगर दरअसल तो उन्होंने मुझे इसपर बधाई ही दी। "कांग्रेसको या किसीको भी आपको नाराज नहीं करना चाहिये। आप तो अपने रास्ते जांय। आपने अंग्रेजोंके प्रति

जो लिखा है, उसे मैंने देखा है। वह लोग सुननेवाले नहीं, पर आपको इससे क्या पड़ी है? आपका काम तो जिसको आप धर्म मानते हैं, वह सबको सुनानेका ही है। देखो न, अभीके समय कांग्रेसने ही आपकी नहीं सुनी। स्वयं व्यासकी किसीने नहीं सुनी, तो किसी दूसरेकी बात ही क्या है? महाभारत जैसा ग्रन्थ लिखकर अन्तमें उन्होंने एक श्लोक लिखा है, जो भारत सावित्रीके नामसे प्रख्यात है।" यह कहकर ऊपर लिखा श्लोक मुझे सुनाया। यह श्लोक सुनाकर उन्होंने मेरी श्रद्धाको दृढ़ किया, और बताया कि मैंने जो मार्ग पसन्द किया है वह दुर्गम है।

मगर मुझे यह मार्ग ऐसा कठिन लगा ही नहीं है। भले ही आज सरदार और मैं अलग-अलग रास्तेपर जाते हुए दिखाई देते हों, पर इसमें हमारे दिल थोड़े ही अलग हुए है? उनको अलग रास्ते जानेसे मैं रोक भी सकता था पर ऐसा करना मुझे ठीक नहीं लगा। राजाजीकी दृढ़ताके आगे इस तरहका आग्रह अधर्म गिना जाता। राजाजीको भी मैं रोक सकता था। पर ऐसा करनेके बदले मैंने उन्हें उनके रास्ते जानेको उत्तेजन दिया। ऐसा करना मैंने अपना धर्म समझा। अगर मुझमें आज जो नया सा मालूम पड़ता है, उस क्षेत्रमें अहिंसाके प्रयोगको सफल करके बतानेकी शक्ति होगी, तो मेरी श्रद्धा टिकी रहेगी। जनताके बारेमें मेरा जो अभिप्राय है वह सच्चा होगा, तो सरदार और राजाजी पहलेकी तरह मेरा हाथ ऊंचा करेंगे।

मगर यह नया-सा लगनेवाला क्षेत्र है कहाँ? कांग्रेसके प्रस्तावों और 'हरिजन'के लेखोंका अध्ययन करनेवालोंके लिये यह नया-सा लगनेवाला क्षेत्र नया नहीं है। सरकारके खिलाफ लड़नेकी अहिंसा एक क्षेत्र है। इसे मैंने हमेशा कमजोरका हथियार कहा है। इसका उपयोग हिन्दुस्तानने करके देख लिया है और बहुत हदतक यह प्रयोग सफल हुआ कहा जा सकता है। हम यह कह सकते हैं कि इस किस्मकी अहिंसा भी कांग्रेसमें स्थायी स्थान पा चुकी है।

दूसरा क्षेत्र है हमारे आपसके झगड़ोंमें जैसे कि हिन्दू-मुस्लिम फसाद और अराजकता मचनेपर जो उपद्रव होंगे, उनमें अहिंसाका उपयोग। ऐसे वक्तपर हम अहिंसाका ऐसा सफल प्रयोग अभीतक नहीं कर सके जो प्रत्यक्ष देखा जा सके। इसलिये जब अराजकताका भय हमारी आँखोंके सामने नाच रहा है तब कांग्रेसवाले क्या करें? डंडेका जवाब डंडेसे दें या डंडेवालोंके आगे सिर झुकाकर, मारको बर्दाश्त करके दें? इस प्रश्नका उत्तर जितना हम समझते हैं उतना सरल नहीं है। इसकी पेचीदगीमें न जाकर, मैं इतना ही कहूँगा कि ऐसे वक्तपर कांग्रेसवाले स्वयं मरकर जितना बचा सकते हैं उतना बचायें, दूसरोंको मारकर कभी नहीं। बिना मारे मर जानेवालोंने अपनी जिम्मेवारी सौ फी सदी अदा की है। परिणाम तो ईश्वरके हाथमें है। यह अहिंसा दुर्बलकी अहिंसा नहीं है यह तो स्पष्ट है। इसमें जेल जानेका लाभ नहीं है। सरकारके प्रति हृदयमें विष भरा हो तो भी उसे छिपाकर जेलमें जा सकते हैं; असहयोग कर सकते हैं। मगर जहाँ तलवार, छुरी, लाठी, पत्थर आदिका खुल्लेसे उपयोग हो रहा हो, वहाँ अकेला आदमी

क्या करे? मनमें द्वेष रखनेवाला क्या तलवारके वारको झेलेगा? यह स्पष्ट है कि ऐसा वार सहनेवालेका हृदय प्रेम और दयासे सराबोर होना चाहिये। जो मनुष्य विरोधी-को अपना अंग समझता है, वही उसका वार झेलेगा और उसे वह फूलके समान गिनेगा। ऐसा एक आदमी अच्छेके संयोगोंमें हजारोंका काम कर सकता है इसके लिये ऊंचे प्रकारके हृदय-बलकी आवश्यकता है।

जो स्त्री या पुरुष ऐसी शक्ति बता सकता है, वह बाहरी आक्रमणका सामना अच्छे प्रकारसे कर सकता है। यह तीसरा क्षेत्र है। कांग्रेसकी कार्यवाहक समितिने माना कि भीतरी आक्रमणके लिये अहिंसाका प्रयोग फिर भी चल सकता है, पर बाहरसे चढ़ाई करके आनेवाले शत्रुके खिलाफ अहिंसाके द्वारा लड़नेकी शक्ति हिन्दुस्तानमें नहीं है। मुझे उनके इस अविश्वासके कारण दुख होता है। मैं नहीं मानता कि हिन्दुस्तानके करोड़ों निशस्त्र लोग इस व्यापक क्षेत्रमें अहिंसाका प्रयोग सफल नहीं कर सकेंगे। कांग्रेसके दफ्तरमें जिनका नाम है, वह जिनकी श्रद्धा डगमगा गई हो ऐसे 'सरदार' सरीखे, सरकारको यह दृढ़ विश्वास बताकर आश्वासन दे सकते हैं कि अहिंसा ही एक ऐसा हथियार है जो हिन्दुस्तानके योग्य है। कदाचित कोई कांग्रेसी ऐसी शंका करें कि 'हिन्दुस्तानमें जो इतने लड़नेवाले पड़े हैं उनका क्या होगा?' मेरी समझमें यह सारा कारण है कि सब कांग्रेसी केवल अहिंसक सेनाके द्वारा ही रक्षा करनेकी तालीम लें। यह प्रयोग नया ही है। बीस वर्षसे एक क्षेत्रमें अहिंसाका सफल प्रयोग करनेवाले कांग्रेसी यह नया प्रयोग न करें, तो फिर दूसरा कौन करेगा? मेरा यह अटल विश्वास है कि हमारे पास आवश्यक संख्यामें अहिंसक सेना हो तो इस नये क्षेत्रमें भी हमें विजय मिल सकती है और जो करोड़ों रुपये आज फिजूल खर्च हो रहे हैं वे बच सकते हैं।

इसलिये मैं यह आशा लगाये बैठा हूं कि प्रत्येक गुजराती स्त्री, पुरुष, अहिंसाको दृढ़तासे पकड़े रहेंगे और सरकारको विश्वास दिलायेंगे कि वह लोग कभी हिंसक बलका प्रयोग नहीं करेंगे। हिंसक बलका प्रयोग करके जय पानेकी भी आशा हो तो उस जयका त्याग कर देंगे, पर अहिंसात्मक बलका नहीं। भूल करके भी हम भूल न करना सीखेंगे। जितनी बार गिरेंगे उतनी बार फिर उठकर खड़े हो जायेंगे।

हरिजन-सेवक
१३ जुलाई, १९४०

खाँ साहबकी अहिंसा

जहाँ हर तरफ "शुद्ध अहिंसा" की होली जल रही है, वहाँ खाँ साहबकी जीती जागती अहिंसा कायम है यह बात हमारे लिये चिराग जैसी रोशन है। खाँ साहबका निवेदन मनन करनेके काबिल है। खाँ साहबको शोभा भी यही देता है। खाँ साहब पठान हैं। पठान तो तलवार, बन्दूक लेकर पैदा हुये हैं ऐसा कहा जा सकता है।

रौलट एक्टकी लड़ाईके जमानेमें जब खुदाई खिदमतगार आमादा हुये, तब खाँ साहबने उनके हथियार छुड़वा दिये। सरकारके साथ तो लड़ना ही था लेकिन खाँ साहबने अहिंसाका सच्चा तजुरबा दूसरी ही जगह पाया। पठानोंमें बदला लेनेका कानून ऐसा सख्त है कि अगर एक खानदानमें खून हो गया हो तो उसका बदला खूनसे ही लेकर छुटकारा होता है। एक बार खूनका बदला लिया, तो फिर उस खूनका बदला लेना होता है। इस तरह पीढ़ी दर पीढ़ी खूनका बदला खूनसे लेनेका कहीं अन्त ही नहीं आता था। यह भी हिंसाकी हद और हिंसाका दिवाला था क्योंकि इस तरह खूनका बदला लेते-लेते खानदान बरबाद हो जाते थे। खाँ साहबने पठानोंकी ऐसी बरबादी देखी और अहिंसामें उनकी बेहतरी पायी। उन्होंने सोचा कि यदि मैं पठान लोगोंको समझा सकूँ कि हमको न सिर्फ खूनका बदला नहीं लेना है बल्कि खूनको भूल जाना है, तो एक दूसरेसे बदला लेना बन्द हो जायेगा। हम जिन्दा रह सकेंगे और जिन्दगीको कामयाब भी कर सकेंगे। यह नकदका सौदा है। उनके अनुयायियोंने उसपर अमल किया। अब ऐसे खुदाई खिदमतगार पाये जाते हैं, जो खूनका बदला लेना भूल गये हैं। यह ताकतवरकी अहिंसा या सच्ची अहिंसा कही जा सकती है।

अगर खाँ साहब कांग्रेसमें रहते तो उनकी जिन्दगीका काम खाकमें मिल जाता। वह पठानोंसे किस मुँहसे कहते कि 'तुम लड़ाईमें भरती हो जाओ? वह बदला न लेनेका कानून अब रद्द हुआ समझो।' ऐसी भाषा पठान समझ ही नहीं सकते। वह तो तुरंत यही जवाब देते कि जर्मनी अपना बदला ले रहा है, इंगलैण्ड मुकाबला कर रहा है, वह हार जायगा तो खुद लड़ाईकी तैयारी करेगा। इसलिये इस लड़ाईमें और हमारे खूनका बदला खूनसे लेनेमें रत्ती भर भी फर्क नहीं। ऐसी दलीलोंके सामने खाँ साहबकी जबान बन्द हो जाती, इसलिये उन्होंने अपना ही काम जारी रखना पसन्द करके कांग्रेससे निकल जानेका फैसला किया। खाँ साहबको अहिंसाका पैगाम पहुँचानेमें कहाँतक कामयाबी हुई वह मैं नहीं जानता। इतना ही जानता हूँ कि खाँ साहबकी श्रद्धा दिमागी नहीं, केवल दिलसे निकली हुई है, इसलिये वह हमेशा कायम है। अब कबतक उनके चेले उनकी तालीममें लगे रहेंगे यह खुद खाँ साहब भी नहीं कह सकते और न इसकी उन्हें परवाह है। उनको तो अपना फर्ज पूरा करना है। परिणाम

खुदापर छोड़ दिया है। उनकी अहिंसाका आधार कुरान शरीफ है, खाँ साहब पक्के मुसलमान हैं। वह लगभग एक वर्ष तक मेरे साथ रहे। बावजूद बीमार होनेके, उन्होंने न कभी नमाज कजाकी और न रोजा। खाँ साहबके दिलमें दूसरे मजहबोंके प्रति आदर है। उन्होंने गीताका भी थोड़ा अभ्यास किया है। वह हमेशा बहुत कम पढ़ते हैं। लेकिन जो पढ़ते या सुनते हैं वह अगर अमलमें लानेके काबिल हो तो उसपर अमल करनेमें उन्हें देर नहीं लगती। वह लम्बी-चौड़ी दलीलोंमें नहीं पड़ते। जरा सभ्यता और तुरन्त हाँ या ना कह सकते हैं। अगर खाँ साहबको पूरी सफलता हासिल हुई, तो उससे बहुत सी उलझनें सुलझ सकती हैं। आज तो कुछ नहीं कहा जा सकता। चाक पर मिट्टी है, मटका उतरेगा या गागर, इस बातको तो खुदा ही अच्छी तरह जानता है।

हरिजन-सेवक
२० जुलाई, १९४०

४१

अहिंसाका सर्वोत्तम क्षेत्र

पिछले हफ्ते मैंने अहिंसाके तीन क्षेत्रोंके बारेमें लिखा था। आज चौथे और सर्वोत्तम क्षेत्रकी तरफ ध्यान खींचना चाहता हूँ। वह है कौटुम्बिक क्षेत्र। यहाँ 'कौटुम्बिक' शब्दको जरा विस्तृत रूपमें समझना चाहिये। जिस संस्थाके हम सदस्य हों, उसके सब सदस्योंको एक कुटुम्ब रूप ही समझना चाहिए। इस क्षेत्रमें अहिंसाका प्रयोग सफल ही होना चाहिये, न हो तो समझना चाहिये कि हममें शुद्ध अहिंसाका पालन करनेकी काबिल नहीं हैं। क्योंकि जिस प्रेमका पालन हम अपने कुटुम्ब या अपनी संस्थामें अपने सगे सम्बन्धियों या साथियोंके प्रति करते हैं, उसी प्रेमका पालन हमें अपने शत्रु या चोर, डाकूके प्रति भी करना है। यदि हम पहलेमें निष्फल हुए, तो दूसरेमें सफल होनेकी आशा रखना 'आकाश-पुष्प' प्राप्त करनेकी आशा रखने जैसा है।

आम तौरपर यह मान लिया जाता है कि कुटुम्ब या संस्थामें हम अहिंसाका पालन न कर सकें तो भी राजनीतिमें हम उसका पालन कर लेंगे। यह निरा भ्रम है। जिसका हम आजतक पालन करते आये हैं, उसे अहिंसाका नाम देना, अहिंसाको बदनाम करना है। ऐसी लूली-लँगड़ी अहिंसा हमें अनीके समय काम दे ही नहीं सकती। अहिंसाकी बारह खड़ी तो कुटुम्बमें ही सीखी जा सकती है। अगर हम यहाँ उत्तीर्ण हो गये, तो फिर सब क्षेत्रोंमें उत्तीर्ण हो सकेंगे, यह मैं अनुभवसे कह सकता हूँ। क्योंकि अहिंसक मनुष्यके लिये तो सारा जगत एक अपना कुटुम्ब है। जो ऐसा मानता है वह किससे डरेगा? और किसे डरायेगा? कहा जा सकता है कि इस शर्तके अनुसार तो अहिंसक बहुत कम

रह जायेंगे। ऐसा होना सम्भव है। लेकिन यह मेरी शर्तका जवाब नहीं। जो अहिंसाको माननेवाले हैं, उन्हें तो अहिंसा पालनकी शर्त तो जान ही लेनी चाहिये। इससे भड़क कर अहिंसाका त्याग करना हो, तो भले ही कर दिया जाये। जब कांग्रेस कार्यसमितिने अपनी स्थिति साफ कर दी है, तो अहिंसा-पालनका दावा करनेवालोंके लिये यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि अहिंसा उनसे क्या चाहती है। फिर भले ही ऐसा करनेमें अहिंसाकी सेना छोटी रह जाये। छोटी भले ही हो, पर यदि वह सच्ची होगी तो किसी रोज उससे बड़ी होनेकी आशा की जा सकती है। मगर झूठीमेंसे तो छोटी या बड़ी कुछ भी बननेकी नहीं।

मेरे लिखनेका कोई यह अर्थ न करें कि इन शर्तोंको सम्पूर्ण पालन करनेवाले ही अहिंसक दलमें रह सकते हैं। जो लोग इन शर्तोंको स्वीकार करते हैं और इनके पालन करनेका उत्तरोत्तर अधिक प्रयत्न करते हैं, वे सब इस दलमें भरती हो सकते हैं। यह दल सम्पूर्ण अहिंसकोंका नहीं किन्तु अहिंसाके पालनका शुद्ध प्रयत्न करनेवालोंका होगा।

पचास वर्षसे मेरा प्रयत्न मेरे जीवनको उत्तरोत्तर अहिंसामय बनाने और साथियोंको ऐसी प्रेरणा देनेका रहा है। मेरा मत है कि इस प्रयत्नमें अच्छी मात्रामें सफलता मिली है। जैसे-जैसे बाहरका वातावरण निर्बल और निराशाजनक मालूम होता है, वैसे-वैसे मेरा उत्साह और मेरी श्रद्धा बढ़ती जाती है और मैं अहिंसाकी शर्तोंको अधिक स्पष्टतासे देखता हूँ।

हरिजन-सेवक
२० जुलाई, १९४०

अहिंसा कैसे सीखी जाय?

प्रश्न—आप अहिंसा-अहिंसा चिल्लाते रहते हैं, मगर इससे लोगोंमें अहिंसा आनेवाली नहीं। अब जब कि आपने गुजरातीमें लिखना शुरु किया है, तो आपको लोगोंको बताना चाहिये कि बलवानकी अहिंसाको या शुद्ध अहिंसाको वे किस तरह अपने जीवनमें उतार सकते हैं।

उत्तर—प्रश्न आपका अच्छा है और ठीक मौकेपर पूछा गया है। आपके पूछनेके पहले ही मैं इस प्रश्नका जवाब अनेक बार टुकड़े-टुकड़े करके कई जगह दे चुका हूँ। मगर मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि मुझे याद नहीं पड़ता कि इसी एक प्रश्नको लेकर अलगसे मैंने लिखा है। इसपर जितना चाहिये उतना वजन मैंने नहीं दिया। मेरा समय सरकारके साथ लड़नेकी तैयारीमें गया है। आजतक यही उचित भी था। मगर मैंने देखा

कि ऐसा करनेमें मेरी अहिंसा अपंग रही है। बलवानोंकी अहिंसाकी तरफ मैं जा सका भी नहीं। अब अगर हमें आगे बढ़ना है, तो पूर्वकी अहिंसा थोड़े समयके लिये भूल जाना होगा। हम लोगोंमें सच्ची अहिंसा प्रगट होगी, तो पूर्वकी अहिंसाको हम उसके उज्ज्वल स्वरूपमें देख सकेंगे और अल्प प्रयाससे ही उसमें अति-प्रतिहत सफलता प्राप्त कर लेंगे। मैं कांग्रेससे निकल गया हूं। इसलिये कांग्रेसके नामसे मैं अकेला भी सविनय अवज्ञा नहीं करूंगा, पर व्यक्तिगत रूपसे तो जब करनी होगी, तब कर सकता हूं। इसलिये जब शुद्ध अहिंसाका पाठ चल रहा होगा, उस दरम्यान सविनय अवज्ञा बन्द ही रहेगी, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं। मगर ऐसी कल्पनाके अहिंसक-दलमें भरती होनेवालोंको अपने लिये तात्कालिक सविनय अवज्ञाकी आशा नहीं रखनी चाहिए। उनको समझ लेना चाहिये कि जहांतक उन्होंने शुद्ध अहिंसाका अनुभव नहीं किया है, वहांतक वह सविनय अवज्ञा कर ही नहीं सकते।

शुद्ध अहिंसाके नामसे ही हमें भड़क नहीं जाना चाहिये। इस अहिंसाको हम स्पष्ट-तया समझ लें और उसकी सर्वोपरि उपयोगिताको स्वीकार कर लें, तो उसका आचरण जितना कठिन माना जाता है, उतना कठिन नहीं है। 'भारत-सावित्री' की रट लगाना आवश्यक है। ऋषि कवि पुकार-पुकार कर कहता है; "जिस धर्मसे सहजमें ही शुद्ध अर्थ और काम समाये हुए हों, उस धर्मका हम क्यों आचरण नहीं करते ?" यह धर्म तिलक लगाने या गंगा-स्नान करनेका नहीं, किन्तु अहिंसा और सत्य आचरणका है। हमारे पास दो अमर वाक्य हैं: "अहिंसा परम धर्म है" "सत्य के सिवाय दूसरा धर्म नहीं"। इसमें वांछनीय सब अर्थ और काम आ जाते हैं फिर हम क्यों हिचकिचाते हैं ? यह होते हुये भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि जो सरल है, वही लोगोंको कठिन मालूम होता है। यह हमारी जड़ताका सूचक है। यहां "जड़ता" शब्दको निन्दात्मक नहीं समझना चाहिये। मैंने अंग्रेजी शास्त्रियोंका अनुवाद किया है। जड़ता नामका वस्तुमात्रमें एक गुण है और वह अपनी जगह उपयोगी भी है। इसी गुणसे हम टिके रहते हैं। यह न हो तो हमेशा हम लुढ़कते रहें। इस जड़ताके वश होकर हमारे अन्दर इस मान्यताने घर बना लिया है कि सत्य और अहिंसाका पालन बहुत कठिन है, यह दूषित जड़ता है। यह दोष हमें निकाल ही देना चाहिये। पहले तो यह संकल्प कर लेना चाहिये कि असत्य और हिंसाके द्वारा कितना भी लाभ हो, हमारे लिये वह त्याज्य है। क्योंकि वह लाभ, लाभ नहीं किन्तु हानि स्वरूप ही होगा। इतना हम निश्चयपूर्वक मान लें, तो दोनों गुणोंको हम अपने आपमें आसानीसे विकसित कर सकते हैं।

मगर यहां तो हम अहिंसाको ही लेंगे। आजतक हमने चर्खा वगैरहको अहिंसाका स्वतंत्र रूप माना है, और वह है भी। मैं मान लेता हूं कि अहिंसापर पूरा अमल करनेवालेने अपने माता-पिता पुत्रादि और पति-पत्नि, नौकरों चाकरोंके साथका संबंध तो अहिंसामय कर ही लिया होगा या कर लेगा। मगर देशमें उपद्रव हों, तो वह क्या करेगा ? हिन्दू-मुसलमानोंमें दंगा हो तो उसके पास उसका क्या इलाज है ? चोर और डाकुओंके उपद्रवके समय वह क्या करेगा ? जब यह उपद्रव हों, तब मर मिटने का संकल्पमात्र काफी नहीं है।

इस तरह मर मिटनेकी योग्यता होनी चाहिये। मैं हिन्दू हूँ तो मुसलमानों और अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ भाई चारेका सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। अपने आस-पास रहनेवाले विधर्मियोंके साथ भी ऐसा ही बर्ताव करना चाहिये जैसा कि स्वधर्मियोंके प्रति हमारा बर्ताव होता है या होना चाहिये। उनकी सेवाका अवसर ढूँढ़कर उनकी सेवा करनी चाहिये। इस सेवामें डर नहीं होना चाहिये, कृत्रिमता नहीं होनी चाहिये। अहिंसाके शब्दकोषमें डरको तो कोई स्थान ही नहीं है। इस तरह भाईचाराका सम्बन्ध करनेवाला ही साम्प्रदायिक दंगेमें अपने आपको खपा सकता है। यही बात चोर-डाकुओंके विषयमें भी लागू होती है। चोर-डाकुओंके आम तौरपर संप्रदाय नहीं होते। पर इतना तो हम जानते हैं कि सामान्यतः अमुक कौमोंमेंसे चोर-डाकू आते हैं। उनके भी साथ हमें संबन्ध जोड़ना है। उदाहरणार्थ, रविशंकर महाराज इस कोटिके हैं। उन्होंने यह महान कार्य सहज रूपमें किया है। ऐसा करनेवाले बहुत थोड़े मिलेंगे। यह क्षेत्र बहुत विशाल है। इसमें शुद्ध प्रेमके अतिरिक्त दूसरी किसी योग्यताकी जरूरत नहीं। रविशंकर महाराजको अंग्रेजीका कुछ भी ज्ञान नहीं। गुजराती भी व्यवहार चलाने लायक ही जानते हैं। ईश्वरने उन्हें पड़ोसीके प्रति प्रेम करनेका महान गुण बख्शा है। और उनकी सादगी भी ऐसी है कि उसपर सबकी आँख जाती है।

इसलिये जहाँ-जहाँ अपने प्रत्येक कार्यमें अहिंसापर अमल करनेवाले लोग रहते हों, वहाँ हरएकको अपने-अपने लिये कार्यक्रम बना लेना चाहिए। उसमें इतनी जागृति होनी चाहिये कि अपने एक-एक क्षणका वह हिसाब दे सके।

हरिजन-सेवक
२० जुलाई, १९४०



अहिंसाका मार्ग

प्रश्न—आपने अंग्रेजोंके सामने हथियार छोड़कर अहिंसाका मार्ग ग्रहण करनेकी तजवीज रक्खी है। इसमें एक नैतिक कठिनाई पैदा होती है। 'अ'की अहिंसा 'ब'की हिंसाको उत्तेजन देती है। हिंसक मनुष्य जड़वत बन जाता है। अगर अहिंसा जड़-पदार्थोंके संघर्षमें आये तो जड़ पदार्थपर उसकी अहिंसाका असर होनेवाला नहीं। इसलिये मुझे तो लगता है कि आपकी इस कल्पनामें कहीं न कहीं दोष हो सकता है कि किसी छोटेसे क्षेत्रमें अहिंसा सफल हो जाय। इतना ही हो तो उस अहिंसाकी कीमत ही क्या? उसके लिये जो आप दावा करते हैं, वह तो निश्चय ही नहीं टिक सकता।

उत्तर—आप जैसा मानते हैं, उस तरह अहिंसाका तुरंत दिवाला नहीं निकलता। अहिंसा सबसे बड़ा बल है। लेकिन महान् शक्तियोंका सभी पूरी तरह उपयोग कर सकें,

तो उनकी महत्ता कहाँ रही ? पानी जैसे हर रोजके इस्तेमालके पदार्थमें जो शक्ति है उसका भी अन्त हम नहीं पा सके, उसकी कितनी कुछ शक्ति तो हमें चकित कर देती है। तो अहिंसा जैसी सूक्ष्मतम शक्तिको हमें इस तरह तुच्छ समझकर फेंक नहीं देना चाहिये, बल्कि उसकी अनन्त शक्तियोंकी शोध धैर्य और विश्वाससे करनी चाहिये। देखते ही देखते इस शक्तिका महान प्रयोग हम खासी अच्छी तरह सफल कर सके हैं। मैंने इस प्रयोगको बहुत नीचा स्थान दिया है। इसे अहिंसाका नाम तक देते हुये मुझे संकोच लगता है। तो भी जिस तरह कहा जाता है कि राम-नामके प्रतापसे पानी पर पत्थर तैरे,उसी तरह अहिंसाके नामसे जो प्रवृत्ति चली उससे देशमें भारी जागृति हुई और हम आगे बढ़े। जिनका विश्वास अविचल है, वे इस प्रयोगको और आगे बढ़ा सकते हैं। हिंसा करनेवाले सब जड़वत् होते हैं, इस वाक्यमें अतिशयोक्ति है। कुछ लोग जरूर पागल-जैसे बन जाते हैं। ऐसे अपवाद रूप मामलेके ऊपरसे हम अपनी नीति निश्चित करने बैठेंगे, तो सम्भव है, हम भूलमें पड़ जांय। नियमोंको सामान्य अनुभवपरसे बनाना चाहिये। यही सुरक्षित रास्ता है। और सामान्य अनुभव यह है कि बहुत सी हिंसाका निवारण अहिंसाके द्वारा हो जाता है। इस अनुभवपरसे हम यह अनुमान लगा सकते हैं, कि तीव्र हिंसाका प्रतिकार तीव्र अहिंसासे हो सकता है।

अब हम घड़ी भरके लिये जड़ वस्तुका विचार करें। जो मनुष्य पत्थरसे सिर मारेगा उसका निश्चय ही सिर फूटेगा। मान लीजिये कि हमारी तरफ वेगसे पत्थर आ रहा है, उसके सामने जानेसे दुःखद मृत्यु आनेवाली है इसलिये रास्तेसे खिसक जानेसे हम बच सकते हैं। पर खिसकनेका कोई रास्ता ही न हो, तो धैर्यसे हम जहाँ हों, वहीं खड़े होकर पत्थरको पड़ने दें तो चोट कमसे कम आयेगी और मृत्यु भी आयेगी तो वह दुःखद नहीं होगी।

इसी विचार-श्रेणीको लम्बा करके हम यह कल्पना कर सकते हैं कि पागल आदमीका अगर कोई सामना न करे, तो अन्तमें वह थक ही जायगा। यह क्यों नहीं हो सकता कि अनेक मनुष्योंके प्रेममय बलिदानसे पागलका पागलपन ही जाता रहे ? अत्यन्त पागलोंके भी बुद्धिमान् होनेके उदाहरण देखे गये हैं।

तात्पर्य यह है कि अहिंसाकी शक्तिका कोई माप नहीं। जिसमें धीरज होगा, वह जरूर उसका रस लूटेगा।

हरिजन-सेवक
२७ जुलाई, १९४०



दो सोचने लायक खत

एक विवेकी भाई लिखते हैं :—

"पूर्ण अहिंसावादियोंके नाम मांगे गये। तब मुझे नाम भेजनेकी इच्छा हुई थी लेकिन मैंने अपने आपको रोक लिया क्योंकि (१) मेरे आचरणमें अहिंसा कम है, (२) दिलमें अंग्रेजोंके प्रति द्वेष भाव है। लंदन या इंगलैंडकी आजकल विनाशकारी खबरें पढ़कर खुशी होती है। दिल ऐसा ही चाहता है कि अंग्रेज हारें। मैंने सोचा कि यही हकीकत आपको लिख देना ठीक है। आपको कभी मैं धोखा न दूंगा।"

दूसरा खत दक्षिणी अफ्रीकासे आया है उसमें लिखा है :—

"समझमें नहीं आता कि जिन गोरोंको कालोंकी कोई परवाह नहीं और ऐसी लड़ाईके वक्तमें भी जो रंगभेदकी बातें कर रहे हैं उनके लिये हमें (हिन्दुस्तानियोंको) क्या करना चाहिये? हम क्या जान दें? हाल ही में एक विद्यार्थी योरपसे लौटा है। वह कहता है कि ब्रिटिश स्टीमरोंमें जगह होनेपर भी स्टीमरवाले हिन्दुस्तानियोंको जगह देनेमें हिचकते हैं। ऐसी घटनायें देखकर यहां बहुतसे हिन्दुस्तानी और हब्शी यही सोचते हैं कि हमारे वास्ते तो ब्रिटिश एवं बोअर, नाजी और गोरे दोनों समान हैं। दक्षिणी अफ्रीकामें अगर नाजी राज्य होता तो क्या हिन्दुस्तानियों और हब्शियोंको आजकी अपेक्षा अधिक कष्ट सहना पड़ता? कई लोग तो ऐसा भी कहते हैं कि अंग्रेज मुंहसे तो मीठी बातें करते हैं लेकिन करते तो अपना मनमाना ही है। हिटलर साफ-साफ सुनाता है। फिर वह बुरा क्यों? हमें पता तो चले कि हम कहां हैं?"

इन दोनों खतोंकी भाषामें फर्क है मगर भाव दोनोंका एक ही है। दोनों ही अंग्रेजोंके प्रति नफरत और उन्हें मदद देनेकी अनिच्छाके सूचक हैं। ऐसी हालतमें रास्ता निकालना मुश्किल है। लेकिन अहिंसा ऐसे समय पर अपना ही तेज दिखाती है।

पहले तो हमें अंग्रेज और अंग्रेजोंकी चालबाजी इन दोनोंकी भिन्नता समझनी चाहिए। उनकी चालबाजीकी हम विवेकपूर्वक टीका भले ही करें परन्तु उनसे नफरत न करें। गलतियाँ तो सबसे होती हैं। मनुष्यमात्र गुणदोषका पुतला है। हमारी गलतीके लिए लोग अगर हमें गाली दें तो हमें अच्छा न लगेगा। परन्तु अगर प्रेमसे कोई हमारी गलती बताये तो हम शायद सुननेके लिए तैयार हो जायं। यही न्याय हमें अंग्रेजोंके संग बर्ताव करते समय लगाना चाहिये। उनकी गलतियाँ हम भले ही उनको बतायें लेकिन उनका बुरा न चाहें। यही प्रार्थना करें कि उन्हें सद्बुद्धि मिले, न कि यह कि उनका नाश हो।

सत्याग्रहकी उत्पत्ति इसी मनोवृत्तिमेंसे हुई है। इसी महान् नियमपर हम पिछले बीस सालसे चलते आये हैं। मैं मानता हूँ कि उससे हमें बहुत लाभ हुआ है। कोई वजह नहीं कि वर्तमान युद्धमें हम अंग्रेजोंकी हार चाहें। दक्षिण अफ्रीकाके खतमें ठीक ही

लिखा है 'अंग्रेज और नाजी इन दोनोंमेंसे हम किसीको पसन्द नहीं कर सकते।' इसके लिए और भी पुष्टिकारक दलील चाहिए तो वह दक्षिणी अफ्रीकासे मिलती है। रंगभेदकी वहाँ पराकाष्ठा है। वहाँ काली चमड़ीवाला हर कोई गोरोंसे अदना दर्जेका समझा जाता है। नाजी इससे ज्यादा क्या कर सकते थे ? इसलिए हमारी स्थिति निष्पक्षतावाली होनी चाहिये। यह सही है कि हिन्दुस्तानको हम अंग्रेजोंसे आजाद करना चाहते हैं लेकिन इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि हम जर्मनीका नाश चाहें। हमारी आजादी हम अपनी ताकतसे हासिल करेंगे और अपने ही ताकतसे उसकी हिफाजत भी करेंगे। इसमें हमें अंग्रेजोंकी या दूसरे बाहरवालोंकी मददकी जरूरत नहीं। जिनका अहिंसापर विश्वास है वे तो अहिंसा-बल ही पर इसकी प्राप्ति तथा हिफाजतका आधार रक्खेंगे।

हमारे देशमें एक वर्ग ऐसा भी है जो मानता है कि हथियारोंसे ही आजादी मिल सकती है और हथियारोंसे ही आजादीकी रक्षाकी जा सकती है। उनकी स्थिति आजकलके संकटमें नाजुक जरूर है। अगर हमें आजादी हथियारोंसे हासिल करनी है तो वह बिना अंग्रेजोंकी मदद लिये हासिल हो नहीं सकती। इसका मतलब यह हो जाता है कि हमें युद्धमें अंग्रेजोंकी मदद करनी चाहिए। हथियारोंसे उनकी मदद दें तो चाहते न चाहते उनकी ताबेदारीमें और भी जाते हैं। मदद देनेपर भी अगर उनकी हार हो तो हमें किसी दूसरी सत्ताका ताबेदार बनना पड़ेगा। दूसरे शब्दोंमें हिन्दुस्तान कढ़ाईसे निकलकर भट्ठीमें पड़ेगा। आज हिन्दुस्तानको किसीके प्रति भी वैर नहीं। हिटलर वगैरह सब अपने दिलमें खूब जानते है कि अगर आज हिन्दुस्तान लड़ाईमें शरीक है तो वह कोई अपनी इच्छासे या खुशीसे नहीं। हिन्दुस्तान पराधीन है इसलिए उसके पास खुशी या रंजका सवाल ही नहीं। बात तो यह है कि वह सवाल तो कांग्रेसने ही उठाया है, और वह इसलिए कि उसके पास अहिंसाका अस्त्र है। जिनका अहिंसामें विश्वास नहीं उनसे हमारी कोई तकरार नहीं। वे अपने रास्तेपर जायं हम अपने रास्तेपर चलेंगे। ऐसा करते हुए हमें पता चल जायगा कि हिन्दुस्तान कहाँ खड़ा है। अगर कांग्रेसने अपने मुंहपर ताला लगाया होता तो कांग्रेसकी अहिंसाकी नीति सदाके लिए सो जाती। उसको जिन्दा रखना कांग्रेसका धर्म था। इसलिए कांग्रेसको कुछ न कुछ करना जरूरी है। वह क्या होगा, यह हमें जल्दी ही मालूम हो जायगा।

इसलिए ऊपर दिए हुए दोनों पत्रोंके लेखकोंको मेरी सूचना है कि वे पूर्वापूर्वक अपने दिलमेंसे द्वेष, रोष, और तिरस्कारको हटा दें। ये निर्बलताकी निशानियाँ हैं। इनसे मुक्त होकर अगर वे अहिंसाका रास्ता ग्रहण करेंगे तो दुनियामें वे कुछ काम करके दिखा सकेंगे। और उस महान् शक्तिके प्रचारमें अपना हिस्सा भी देंगे। कांग्रेसकी माँग सिर्फ अपने लिए नहीं, सारे देश और विश्वकी सेवाके लिए है।

इसलिए हमारे सच्चे दिलसे यही प्रार्थना निकल सकती है : "ईश्वर सब लड़ने-वालोंका भला करें।"

हरिजन-सेवक

१९ अक्टूबर, १९४०

एक दुःखद घटना

सेवाग्रामसे चलते समय सरदार वल्लभभाई पटेलने हाल ही खेड़ा जिलेमें पड़े एक डाकेका किस्सा सुनाया। डाकू बन्दूकें लेकर आये। आते ही उन्होंने मारपीट शुरू की और लूटपाट कर भाग गये। यह सुनकर मैंने यह महसूस किया मानो मेरा अपना ही घर लूट गया! मैं सोचने लगा कि अगर ऐसा संकट मुझपर आये, तो मैं क्या करूंगा? सहज ही मनमें यह विचार भी उठा कि ऐसे मौकोंपर कांग्रेसवालोंको क्या करना चाहिये। इसके बाद तो विचारधारा कुछ ऐसी उमड़ी कि रोके न रुक सकी। उसने मुझपर पूरा अधिकार कर लिया। मैं सोचमें डूब गया: गुजरातमें कांग्रेसने लगातार एक ही दिशामें काम किया है। उसे सरदार जैसा सरदार मिला है। फिर वहाँ ये डाके कैसे? यह लूटमार कैसी? ऐसी हालतमें वहाँ कांग्रेसका असर कितना समझा जाय? कांग्रेसियोंके खयालमें लोग शायद यह सोचने लगे हैं कि अगर मुल्कमें अंग्रेज सरकारकी हुकूमत न रही, तो देशकी सारी हुकूमत अपने आप कांग्रेसजनोंके हाथमें चली जायगी। लेकिन ऐसी कोई बात है नहीं। पिछले २० वर्षोंसे हम इस दिशामें कोशिश करते आ रहे हैं, पर वह कोशिश अबतक फूली फली नहीं है। कांग्रेसने खुद जिस हथियारको अपनाया था, उसमें उसका पूरा-पूरा विश्वास न था। यही वजह है कि आज कांग्रेस अहिंसाका जितना कुछ सफल उपयोग कर सकी है, वह सिर्फ कमजोरके हथियारके रूपमें। लेकिन हुकूमत तो ताकतवालोंकी ही चल सकती है। चुनांचे अहिंसक राज तो वे ही चला सकते हैं, जिन्होंने अहिंसाकी बड़ी-बड़ी ताकतको पहचाना हो। अगर इस तरहकी कोई ताकत हमारे पास होती, तो न हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़े होते और न लुटेरे लूट-मार कर सकते। कहा जा सकता है कि ऐसी ताकत तो हजरत ईसा या भगवान बुद्धमें ही हो सकती है। लेकिन यह ठीक नहीं; क्योंकि न तो हजरत ईसाने और न भगवान बुद्धने ही राजनीतिके क्षेत्रमें अहिंसाका प्रयोग किया; या यों कहिये कि उनके जमानेमें आज की-सी राजनीति थी ही नहीं। इसलिए कांग्रेसका प्रयोग एक नया प्रयोग है। मगर कांग्रेसवालोंने इसे श्रद्धापूर्वक, ज्ञानपूर्वक और प्रामाणिकतापूर्वक नहीं किया। अगर इस प्रयोगमें कांग्रेसवाले इन तीनों चीजोंसे काम लेते, तो जिस ऊंचाईपर कांग्रेस आज पहुंची है, उससे कहीं ऊंचे वह पहुंच चुकी होती।

लेकिन मैं गयी-गुजरीपर आँसू बहाना नहीं चाहता। उसका जिक्र इसीलिए करता हूँ कि उससे वर्तमानकी सुलझानेमें मदद हो। अब भी मौका है—'समय रहते चेत गये तो बाजी हाथमें रह सकेगी, वर्ना हाथसे निकल जायगी'— सत्ता तो बलवानके गलेमें ही जय-माला डालेगी। फिर यह बल चाहे शरीरका हो, चाहे हृदयका हो, और अगर आप 'आत्मा' शब्दसे न चौंकें, तो आत्माका हो। हृदयबल ही शुद्ध आत्मबल है। अगर हम शारीरिक बलसे सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं, तो पिछले बीस सालों से जो तालीम हमने अपने लोगोंको दी है, उसपर पानी फेरना होगा, और उससे बिलकुल उलटे ढंगकी एक

नयी तालीम नये सिरेसे देनी होगी। इसमें काफी वक्त लगेगा। आज जब मुसीबत सिर पर मंडरा रही है, इतना वक्त हम कहांसे लायेंगे ? ऐसे वक्त तो जो ताकत जिसके जिसके पास है, उसीके जरिये हुकूमत हासिल करनेकी कोशिश उसे करनी होगी। इसलिए मेरी यह पक्की राय है कि अगर कभी कांग्रेसके हाथमें हुकूमत आयी भी तो वह सिर्फ हृदय-बल या आत्मबलके जरिये ही आयेगी।

यह बल भी गया है। नये सिरेसे इसे पैदा करनेके लिए आज हमारे पास समय और सामान नहीं है। जिसने अबतक अहिंसाका उपयोग निर्बलके हथियारके रूपमें किया है, वह यकायक उसे सबलके हथियारके रूपमें किस तरह चला सकेगा ? बात ठीक है। फिर भी मेरे खयालमें आज तुरन्त तो हम अहिंसक बलका ही प्रयोग कर सकते हैं। इसमें खतरेकी कोई बात नहीं है, और असफलता भी सफलता बन जाती है। हो सकता है कि जनता आज इस दिशामें जो कुछ करना चाहती है, उसे करनेमें असमर्थ रहे, फिर भी वह गढ़ेमें तो हरगिज न गिरेगी। न नामर्द या कायर ही बनेगी। कोई उसे नामर्द कह भी न सकेगा। इसके खिलाफ, अगर वह शरीरबलका यानी हिंसाका रास्ता अख्तियार करती है, तो मुमकिन है कि वह नामर्द साबित हो, और इस नये व अनजाने रास्तेपर चलनेवाले मर-कट भी जायें।

इसलिए कांग्रेसजनोंको चाहिये कि वे आज ही से तथाकथित डाकुओं और लुटेरोंको ढूंढ निकालनेमें लग जायं, और उनको समझने व समझानेकी कोशिश करें। यह सच है कि ऐसे सेवक मांगनेसे नहीं मिल सकते। लेकिन कांग्रेसवालोंको समझना चाहिये कि यह काम जितना जोखिमका है, उतना ही महत्वपूर्ण भी है। इसके लिये हजारोंकी जरूरत चाहे न हो, कुछकी जरूरत तो है ही।

दूसरा काम हमारे सामने ऐसे लोगोंको तैयार करनेका है, जो उपद्रव या लूट-मारके समय लुटेरोंसे मिलें और उनको समझाने या रोकनेकी कोशिशमें घायल होने या मरनेको तैयार रहें। इस कामके करनेवाले भी ज्यादा नहीं हो सकते; फिर भी एक खासी अच्छी संख्यामें इस तरहके शान्तिदल तैयार होने चाहिये। नहीं तो अन्धाधुन्धीका वक्त आ जाने पर न सिर्फ कांग्रेसकी लाज जायगी, बल्कि अबतककी उसकी सारी कमाई मिट्टीमें मिल जायगी।

तीसरा काम, धनवानोंको अपना धर्म सोच लेनेका है। अगर अपनी जायदादकी हिफाजतके लिए उन्होंने सिपाही वगैरह रखे, तो मुमकिन है कि लूटमारके हंगामेमें ये रक्षक ही उनके भक्षक बन जायें। चुनांचे धनवानोंको या तो हथियार चलाना सीख लेना चाहिये या अहिंसाकी दीक्षा ले लेनी चाहिये। इस दीक्षाको लेने और देनेका सबसे उत्तम मन्त्र है—

'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'

यानी, 'अपनी दौलतका त्याग करके तू उसे भोग।' इसको जरा विस्तारसे समझाकर कहूँ तो यह कहूंगा कि तू करोड़ों खुशीसे कमा, लेकिन समझ ले कि तेरा धन सिर्फ तेरा नहीं, सारी दुनियाका है; इसलिए जितनी तेरी सच्ची जरूरतें हों, उतनी पूरी करनेके बाद जो बचे उसका उपयोग समाजके लिए कर। शान्तिकी साधारण अवस्थामें तो इस नसीहतपर

अमल नहीं हुआ, लेकिन संकटके इस समयमें भी अगर धनिकोंने इसे नहीं अपनाया, तो दुनियामें वे अपने धनके और भोगके गुलाम बनकर ही रह सकेंगे, और अन्तमें शरीर-बलवालोंकी गुलामीमें बंध जायेंगे।

इसमें तो शक नहीं कि इस लड़ाईके अन्तमें धनिकोंकी सत्ताका अन्त होनेवाला है, और गरीबोंका सिक्का चलनेवाला है। फिर चाहे शरीरबलसे चले चाहे आत्मबलसे। शरीरबलसे प्राप्तकी हुई सत्ता मानव देहकी तरह क्षणभंगुर होगी, जब कि आत्मबलसे प्राप्त सत्ता आत्माकी तरह अजर और अमर रहेगी।

हरिजन-सेवक
१ फरवरी, १९४२



वही सनातन समस्या

प्रश्न—जबतक धन दौलत है, हर हालतमें उसकी हिफाजत होनी ही चाहिये। फिर क्या वजह है कि आप इस चीजको नहीं समझ पाते? प्रत्येक स्थितिमें हिंसासे बचे रहनेका आपका आग्रह बिलकुल अव्यावहारिक और असंगत है। मेरे विचारमें अहिंसा कुछ चुने हुए लोगोंके ही कामकी चीज हो सकती है।

उत्तर—इस सवालका जवाब इन पृष्ठोंमें और 'यंग इंडिया' में भी कई बार किसी न किसी रूपमें दिया जा चुका है। लेकिन यह एक सनातन सवाल है। इसलिए मेरा काम है कि जितनी बार यह पूछा जाय, मैं इसका जवाब दूं। और, जब प्रश्नकर्ताके सामने सच्चे जिज्ञासु पूछते हैं, तब तो जवाब दिये ही बनता है। मेरा दावा यह है कि आज भी जब हमारे समाजकी रचनाका आधार सोच समझ कर अपनायी हुई अहिंसा नहीं है, सारे संसारमें आदमी एक दूसरेकी भलमनसाहतपर ही जी रहा है और अपनी दौलतको बचाये हुए है। अगर ऐसा न होता तो, दुनियामें बहुत ही थोड़े और बहुत ही क्रूर आदमी बचे होते। लेकिन हकीकत यह नहीं है। परिवारमें लोग परस्पर स्नेहके बन्धनसे बंधे रहते हैं, और परिवारोंकी तरह ही सभ्य माने जानेवाले मानवसमाजमें राष्ट्रोंके अलग अलग दल भी परस्परके इन बन्धनोंसे बंधे हैं। फर्क इतना ही है कि वे जीवनमें अहिंसाके नियमको सर्वोपरि नहीं मानते। इसका मतलब यह हुआ कि अभी उन्होंने इसकी असीम शक्तियोंकी थाह नहीं लगायी है। मैं यह कहूंगा कि अबतक सिर्फ अपनी जड़ताके कारण ही हम यह मानते रहे हैं कि अहिंसाका सम्पूर्ण पालन अपरिग्रह आदि संयम-मूलक व्रतोंको धारण करनेवाले कुछ इने गिने लोग ही कर सकते हैं। बात यह है कि यदि हमें अहिंसाके क्षेत्रमें नितनयी शोध करनी हो, और मानवजातिपर शासन

करनेवाले इस सनातन और महान् नियमकी नयी-नयी शक्तियोंका समय-समयपर संसारको परिचय कराना हो, तो इसके लिए यम नियमोंका पालन आवश्यक है। अगर संसारका यही सर्वश्रेष्ठ नियम है, तो यह सबके लिए कल्याणकारक होना चाहिये। जो अनेक असफलताएं हमारे देखनेमें आती हैं, वे इस नियमकी नहीं, इसका पालन करनेवालोंकी हैं। क्योंकि उनमेंसे कइयोंको तो यह पता तक नहीं रहता कि वे जाने–अनजाने इस नियमके अधीन हो रहे हैं। जब माँ अपने बच्चेके लिए खुद मरनेको तैयार हो जाती जाती है, तब वह अनजाने ही इस नियमका पालन करती है। मैं पिछले पचास बरससे लोगोंको यह समझाता रहा हूँ कि वे इस नियम को समझ बूझकर अपनायें और असफल होनेपर भी इसके पालनमें दत्तचित्त बने रहें। पचास वर्षके इस प्रयोगका परिणाम आश्चर्यजनक हुआ है और अहिंसामें मेरी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी है। मैं दावेके साथ कहता हूँ कि लगातार प्रयत्न करते रहनेसे एक समय वह आयेगा जब लोग सर्वत्र ईमानदारीसे कमाये हुए धनका स्वेच्छासे लिहाज करेंगे और उसकी रक्षामें सहायक होंगे। इसमें शक नहीं कि यह धन पापका धन न होगा। और इसमे उन असमानताओंका उद्धत-प्रदर्शन भी न होगा, जिसमें आज हम घिरे हुए हैं। अहिंसाके व्रतधारीको अन्याय और अनीतिसे कमाये जानेवाले धनसे आतंकित न होना चाहिये क्योंकि उसके पास हिंसाका सफल प्रतीकार करनेके लिये सत्याग्रह और असहयोगका अहिंसक शस्त्र मौजूद है। जहाँ कहीं भी इस शस्त्रका सच्चाईके साथ पर्याप्त उपयोग किया गया है वहाँ हिंसक शस्त्रोंकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई है। अहिंसाके सम्पूर्ण शास्त्रको जनताके सम्मुख रखनेका दावा तो मैंने कभी नहीं किया। उसके लिए ऐसा दावा कभी किया भी नहीं जा सकता। जहांतक मैं जानता हूँ, किसी भी भौतिक शास्त्रके लिए, यहाँ तक कि गणित जैसे निश्चित शास्त्रके लिए भी, इस तरहका दावा नहीं किया जा सकता। मैं तो एक सत्यशोधकमात्र हूँ, और प्रश्नकर्त्ताकी तरह सत्यकी इस शोधमें मेरा अनुसरण करनेवाले मेरे कुछ साथी भी हैं। अपने इन साथियोंको मैं दावत देता हूँ कि वे सत्यकी इस अत्यन्त कठिन किन्तु अतिशय रसपूर्ण शोधमें मेरा साथ दें।

हरिजन-सेवक

१५ फरवरी, १९४२

सच हो, तो अमानुष है

मारवाड़ी रिलीफ सोसायटीके समाज-सेवा-विभागके अवैतनिक मन्त्री लिखते हैं:—

"कलकत्तेकी मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीकी ओरसे बर्मा और मलायाकी ओरसे भागकर आये हुए लोगोंको जातपात, धर्म या वर्णके भेदका कोई खयाल न रखते हुए मदद पहुंचानेका जो काम चल रहा है, उसका बहुत ही संक्षिप्त ब्यौरा मुझे आपके सामने पेश करना है और एक अतिशय गंभीर प्रश्नके बारेमें आपकी मूल्यवान् सलाह मांगनी है। रेल, सड़क या समुद्रके रास्ते जो हजारों निराश्रित लोग रोज कलकत्ते आते हैं, उनके लिये भोजनकी, डाक्टरी मददकी और उन्हें उनके वतनतक पहुँचा देनेकी सुविधा कर देनेका भार सोसायटीने अपने सिर लिया है। कई बहनोंके लिये तात्कालिक प्रसवका भी प्रबन्ध किया गया है। आनेवालोंमें जो बेकार होते हैं, उन्हें कलकत्तेकी प्रतिष्ठित पेढ़ियोंके सहयोगसे उनके लायक काम दिलानेका प्रयत्न भी सोसायटी कर रही है।

इस संबंधमें मुझे आपको एक बहुत ही दुःखद घटनाकी खबर देनी है। इस घटनाके बारेमें मेरा कर्त्तव्य क्या है, सो आप कृपापूर्वक मुझे बतलायेंगे, तो मैं आभारी हूंगा।

१४ मार्चकी रातको चटगांव मेलके आनेके कुछ ही समय बाद, जब मैं कुछ स्वयं-सेवकोंके साथ मेलसे आये हुए लोगोंकी आवश्यकताओंका प्रबन्ध कर रहा था, एक गोरे सैनिकने आये हुए लोगोंमेंसे एक गरीबके छोटे बालकको पकड़कर रेलगाड़ीके नीचे फेंक दिया। यद्यपि मैं आपकी अहिंसाके पुण्यपथका एक नम्र अनुयायी हूं, तो भी मैं उस वक्त अपनेको और अपने साथी स्वयंसेवकोंको बहुत ही मुश्किलसे रोक सका और यह गोरा सैनिक अपनी इस पाशविक करतूतके लिये मार खाते खाते बच गया। मैंने तुरन्त ही इसकी सूचना स्टेशनके सैनिक अधिकारियोंको दी। लेकिन उन्होंने रत्तीभर भी सहानुभूति नहीं दिखायी। बादमें मैं इसी प्रश्नको लेकर श्री के० सी० सेन, आई० सी० एस०से मिला, और यद्यपि उन्होंने मामलेकी बाजाब्ता जांच करनेका वादा किया था, तो भी अभीतक परिस्थितिको सुधारनेके लिये कुछ नहीं किया गया है। स्टेशनके प्लेटफार्मपर अब भी रातमें बहुतेरे गोरे सैनिक चक्कर काटा करते हैं, और डर रहता है कि कहीं रिलीफ सोसायटीके स्वयंसेवकों और प्रजाजनोंके साथ इन गोरे सैनिकोंकी भिड़न्त न हो जाय। इस डरको तुरन्त ही मिटानेकी जरूरत है। मैंने बंगाल कांग्रेस नागरिक-संरक्षण-समितिके सामने भी यह मामला पेश किया है।

बड़ी कृपा होगी यदि आप नीचे लिखे मुद्दों पर मुझे अपनी सलाह देंगे :

(१) क्या मैं इस प्रश्नको लेकर समाचारपत्रोंमें आन्दोलन खड़ा करूं?

(२) मान लीजिये कि कोई गोरा सैनिक किसी असहाय मुसाफिरकी स्त्रीके साथ

कोई बेहूदा बरताव करे, तो क्या हम उसे चुपचाप सहलें, या उसके साथ जोर जबर-दस्तीका व्यवहार करें ?

यदि आप इस संबंधमें अपनी राय 'हरिजन' द्वारा व्यक्त करेंगे, तो उससे हमें बहुत मदद मिलेगी। ऊपर दी हुई घटनाकी सच्चाईके बारेमें मैं सब प्रकारकी जिम्मेदारी लेनेको तैयार हूं।"

गोरे सैनिकोंके दुर्व्यवहारके बारेमें मेरे पास बहुतेरे पत्र मय सबूतके आये हैं, लेकिन मैंने उन्हें दबाये रखा है। परन्तु जब-जब मैंने महसूस किया कि उनको दबा रखना नामर्दगी नहीं तो अनौचित्य अवश्य मानी जायगी, तभी मैंने उन्हें प्रकाशित किया है। मेरी रायमें इस पत्रका न सिर्फ आम जनताकी सुरक्षाकी दृष्टिसे, बल्कि गोरे सैनिकों और सरकारकी दृष्टिसे भी अधिकसे अधिक प्रचार होना चाहिए। मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी पिछले पचीस सालसे काम करनेवाली सारे देशमें प्रसिद्ध एक पारमार्थिक संस्था है। उसके पास धन है और अच्छे कार्यकर्ता भी हैं। जनतामें सोसायटीकी इतनी साख तो है ही कि उसके कार्यकर्ताओंकी उपस्थितिमें कोई सैनिक किसीके साथ दुर्व्यवहार न कर सकेगा। उक्त सैनिकने, इस पत्रके अनुसार जैसा व्यवहार किया है, उससे तो मालूम होता है कि या तो उसका सिर फिर गया था या वह शराबके नशेमें चूर था। मुझे विश्वास है कि जबतक इस मामलेका पूरा पक्का फैसला न हो जायगा सोसायटी इसे छोड़ेगी नहीं। और मुझे यह भी विश्वास है कि सरकारी अधिकारी इस मामलेको दबानेकी कोशिश नहीं करेंगे, बल्कि जैसा मेरे पत्र-लेखकने लिखा है, बात ठीक वैसी ही साबित हो, तो उसका ठीक-ठीक मुआवजा भी देंगे।

यह तो इस घटनाकी चर्चा हुई। पत्र-लेखक चाहते हैं कि यदि भविष्यमें फिर ऐसी ही घटनाएं हों, तो उन्हें क्या करना चाहिये, इस सम्बन्धमें मैं उन्हें अपनी सलाह दूं। ऐसे मौकोंपर हिंसा और अहिंसाका व्यवहार एक ही सा हो सकता है। स्वयंसेवकोंको चाहिये था, कि यदि वे पकड़ सकते, तो उस गोरे सैनिकको पकड़ लेते और उसे उस बालकको हाथ लगानेसे रोकते, या उसके पाससे बालकको छीन लेते; फिर भले ही इस रोकने या छीननेमें उस सैनिकको कोई चोट ही क्यों न आती। बालकको छुड़ा लेनेके बाद या उसको छुड़ानेकी कोशिशमें असफल होनेके बादके व्यवहारका आधार तो छुड़ानेवालेके हिंसक या अहिंसक हेतुपर निर्भर करेगा। यदि उनका हेतु अहिंसक होगा, तो वे अपराधीके प्रति उदारता और सुजनताका व्यवहार करेंगे। लेकिन उन्हें अपनी उदारता और सुजनताका प्रयोग विचारपूर्वक और बुद्धिपूर्वक करना होगा। सब परिस्थितियोंके लिए आचरणका कोई सर्वमान्य नियम, पहलेसे बनाकर रखना कठिन है। मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूं कि वास्तविक उदारताका व्यवहार तभी हो सकता है, जब अपराधी स्वयं दिलसे अपने अपराधको स्वीकार करता हो। मैंने दक्षिण अफ्रीकामें ऐसे अनेक दृश्य देखे हैं, जिनमें रेलवे स्टेशनोंपर गोरों द्वारा अपमानित अफ्रीकन अपना अपमान

करनेवाले उन उद्दण्ड गोरोंसे कहते थे : "भैया, ईश्वर तुम्हें तुम्हारी इस असभ्यताके लिए माफ करेगा।" यह सुनकर वे गोरे उन्हें मारनेके उपरान्त गाली न देते, तो खिलखिलाकर हंसते जरूर। ऐसे अवसरोंपर में खुद तो चुप रहा हूँ और अपमानको पी गया हूँ। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अफ्रीकनोंकी वह तथाकथित उदारता निरी यान्त्रिक चीज होती थी, और उसके लिए गोरोंके मनमें तिरस्कारका पैदा होना उचित ही था। मेरे व्यवहारमें शीलता थी। मैं अपने लिए अधिक अपमान न्यौतना नहीं चाहता था। और उसके लिए मुझे कोई कानूनी कारवाई तो करनी ही न थी। उन दिनोंमें मैं अपने अहिंसक आचरणको मूर्तरूप देनेका यत्न कर रहा था। अगर मुझमें सच्ची हिम्मत होती, तो मैं सद्भावपूर्वक अपना अपमान करनेवालोंकी भर्त्सना करता, और बुरेसे बुरे परिणामके लिए तैयार रहता।

थोड़ा विषयान्तर करके भी मैंने व्यक्तिगत अपमान या आघातके मौकोंपर अहिंसक व्यवहार किस प्रकारका हो सकता है, इसकी यहाँ समीक्षा कर ली है। लेकिन जिस बालकको चोट पहुँचायी गयी, उसका क्या? और पत्र-लेखकने जिस दुर्व्यवहार या आघातकी कल्पना की है उसका क्या? मैं मानता हूँ कि अहिंसक आचरण किसी दूसरे प्रकारका नहीं हो सकता, न होना चाहिये। अपनेको पहुँचनेवाली और अपने आश्रितोंको पहुँचनेवाली चोटके बीच जो भेद प्रायः किया जाता है, वह अनुचित नहीं तो अकारण तो है ही। किसीसे यह आशा नहीं रखी जाती कि वह अपने लिए जो करेगा, उससे अधिक अपने आश्रितोंके लिए करे। निःसन्देह वह अपने आश्रितोंकी इज्जत बचानेके लिए अपना बलिदान करेगा, लेकिन साथ ही उससे यह भी आशा रखी जायगी कि वह अपने लिए भी वैसा ही करे। अगर वह इसके खिलाफ कुछ करेगा तो नामर्द गिना जायगा। और अगर वह अपनी इज्जत आबरूकी रक्षा नहीं कर सकेगा, तो अपने आश्रितोंकी इज्जतको भी नहीं बचा सकेगा। लेकिन मैं स्वीकार करता हूँ कि सच्चा अहिंसक आचरण केवल बौद्धिक दलीलोंसे सिद्ध नहीं होता। आचरणसे पहले बुद्धिका उपयोग करना आवश्यक है। लेकिन आचरणकी शुद्धता तो बारबारके अभ्याससे और शायद बारबारकी असफलताके बाद ही प्राप्त हो सकेगी।

हिंसक व्यवहार किस प्रकारका होना चाहिये, उसकी पड़ताल करनेकी तो सचमुच यहाँ कोई जरूरत ही नहीं है।

हरिजन-सेवक
२९ मार्च, १९४२

अहिंसाकी कसौटी

"एक अर्थमें मैं आज भी शान्तिवादिनी हूँ, यानी मैं मानती हूँ कि ईसाइयोंमें आत्मबल द्वारा पशुबलका सामना करनेका सामर्थ्य होना चाहिये। उन्नीस सौ वर्षोंके बाद भी आज हम कुछ व्यक्तिगत मामलोंमें और छोटे पैमानेपर ही ऐसा कर सकते हैं, यह विचार मनको व्यथासे भर देता है। लेकिन जो शक्ति हमारे अन्दर सचमुच नहीं है, जिसके लिये भूतकालमें हमने कोई तालीम नहीं ली, और न जिसके आवश्यक नियमोंका पालन ही किया, उसके बारेमें यह मान लेना कि वह हमारे अन्दर है, और फिर वैसा ही व्यवहार करना, इसमें मुझे तो निरा शेखचिल्लीपन ही मालूम होता है। जिन्होंने आवश्यक नियमोंका पालन नहीं किया है, उनमें आखिरी वक्त, ऐन मौकेके समय, वह शक्ति नहीं आती। हममें वह आयी नहीं। अतएव एक ओर खड़े रहकर कुछ न करनेकी अपेक्षा तो मैं जिन सिद्धान्तोंको सहज ही उचित और मानव जातिके भविष्यके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण मानती हूँ, उन सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिये जो कुछ मुझसे हो सकता है, सो करना पसन्द करूँगी। निष्क्रिय होकर बैठे रहना बुरीसे बुरी चीज है।

इसलिये जब मेरे शान्तिवादी मित्र मुझसे पूछते हैं कि क्या आप ईसा मसीहके बम बरसाने या बन्दूक दागनेकी कल्पना कर सकती हैं? तो मुझे यह जवाब देनेका अधिकार है कि 'नहीं', मैं वैसी कल्पना नहीं कर सकती, लेकिन मैं यह भी तो नहीं सोच सकती कि वे एक किनारे खड़े रहेंगे और कुछ भी न करेंगे?'

मेरे एक नजदीकी रिश्तेदारने पिछले युद्धके आरम्भमें मुझसे कहा था 'अगर आप आत्मबल द्वारा युद्धको रोक सकती हैं, तो रोकें। न रोक सकती हों तो जो कुछ कर रहा हूँ, मुझे करने दें। और आपका अगर यह खयाल सच हो कि यह युद्ध अपने आपमें इतनी घृणित चीज है कि इसमें शामिल होना भी घृणापात्र बन जाना है, तो इन सब चीजोंको बारबार यों ही होने देनेकी अपेक्षा अपनी जानको जोखिममें डालकर भी इन्हें रोकनेका यथाशक्ति प्रयत्न करना, और ऐसा करते हुए घृणापात्र बनना पड़े, तो बनना मैं पसन्द करता हूँ।' मेरे ये रिश्तेदार पिछले युद्धमें काम आये थे और युद्धसे उतनी ही नफरत रखते थे जितनी कोई भी शान्तिवादी रख सकता है।

भगवान ईसा मसीहने कहा था: 'जो अपने जीवनकी आहुति देता है, वही अगर जीवन पाता है।' क्या इसमें और ऊपरवाले कथनमें अर्थकी बहुत कुछ समानता नहीं है।"

डाक्टर रायडनके इस लेखका बहुत ही विचारपूर्ण जवाब देनेकी जरूरत है। मैं बराबर पश्चिमके शान्तिवादियोंके सम्पर्कमें रहता आया हूँ। मेरी रायमें डाक्टर रायडनने अपने इस लेखमें अहिंसा सम्बन्धी अपने पहलेके विचारोंको तिलाञ्जलि दे दी है। अगर कुछ लोगोंमें व्यक्तितः, छोटे पैमाने पर, ईसामसीहके अहिंसा सम्बन्धी उपदेशोंपर

अमल किया है, तो यह माना जा सकता है कि सतत आचरण व अभ्यास द्वारा बहुतेरे-लोगोंके लिए बड़े पैमानेपर भी, उस तरहका जीवन शक्य हो सकता है। इसमें शक नहीं कि जो 'शक्ति दरअसल आदमीमें नहीं है, उसके होनेकी कल्पना करके वैसा व्यवहार करना' अनुचित और मूर्खतापूर्ण है। लेकिन यह विदुषी लेखिका कहती हैं कि 'जिन्होंने आवश्यक नियमोंका पालन नहीं किया है, उनमें आखिरी वक्त, ऐन संकटके समय, वह शक्ति नहीं आती।'

मैं यह सुझाना चाहता हूँ कि इस त्रुटिका पता चलनेके बाद उसे मिटानेमें थोड़ा भी समय न खोना चाहिये। इसीमें हम कुछ करते हैं, यही नहीं, बल्कि सच्चा काम करते हैं। इसके विपरीत आचरण करके अपने धर्मको भूल जाना सचमुच बुरेसे बुरा काम है।

और मैं यह नहीं मानता कि 'निष्क्रिय होकर बैठे रहना बुरीसे बुरी चीज है'। उदाहरणके लिए, जिस इलाजमें जहरको अपने आप निकल जाने देना जरूरी है, उसमें कुछ न करना, हितकर ही नहीं, कर्त्तव्यरूप भी होता है।

इस वक्त निराशा या नाउम्मेदीका कोई कारण नहीं। आन बानके इस मौकेपर अपने अंगीकृत धर्मको छोड़नेका तो और भी कम कारण है। क्यों नहीं शान्तिवादी अंग्रेज एक ओर हट जांय और अपने समूचे जीवनका नये सिरेसे निर्माण करें? शायद वे सम्पूर्ण शान्ति स्थापित न कर सकेंगे, लेकिन वे उसकी पक्की नींव डाल देंगे और धर्मविषयक अपनी श्रद्धाका दृढ़तम परिचय देंगे। आजकी इस उथल-पुथलके जमानेमें जब अविचल श्रद्धावाले लोग मुट्ठी भर ही हैं, उनका कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपनी धार्मिक श्रद्धाके अनुसार आचरण करके दिखायें, फिर चाहे उसका कोई प्रकट प्रभाव संसारके घटना-चक्रपर पड़ता न दिखायी पड़े। उन्हें यह मानकर चलना चाहिये कि उनके कार्यका प्रत्यक्ष परिणाम भी यथावसर प्रकट होकर रहेगा। उनकी यह दृढ़ता संशयात्माओंको आकर्षित किये बिना नहीं रह सकती। मैं यह भी कहा चाहता हूँ कि डाक्टर मॉड रायडन जैसे लोग निरे अनुयायी नहीं, वे अगुआ हैं। उन्हें अपने मसीहाके गिरि प्रवचनका कठोर अनुशीलन करके तदनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये; जब वे ऐसा करेंगे, तो तुरन्त ही उन्हें पता चलेगा कि उन्हें बहुत कुछ छोड़ना है और बहुत कुछ नये तौरपर बनाना है। बड़ीसे बड़ी जिस चीजका त्याग उन्हें करना है, सो तो साम्राज्यवादके फलका त्याग है। लन्दनवालोंकी मौजूदा अटपटी जिन्दगी और उनकी महंगी रहन-सहन एशिया, अफ्रीका और दुनियाके दूसरे हिस्सोंसे खिंचकर आनेवाले अटूट धनके कारण ही सम्भव हो सकी है। यद्यपि 'हर अंग्रेज' के नाम लिखे गये मेरे पत्रकी चारों ओरसे कड़ी आलोचना हुई है, तो भी मैं उसके एक-एक शब्दपर कायम हूँ। मुझे दृढ़ विश्वास है कि उस पत्रमें कैसी भी संगठित और भीषण हिंसाके विरुद्ध जो उपाय मैंने सुझाया है, उसे आनेवाले जमानेकी प्रजा स्वीकार करेगी। और, अब जब कि दुश्मन हिन्दुस्तानके दरवाजेपर आकर खड़ा है, आचरणका जो तरीका मैंने पहले ब्रिटिश जनताके सामने पेश किया था, उसीको मैं अपने देश भाइयोंके सामने रख रहा हूँ। शायद मेरे देश भाई मेरी सलाह मानें, शायद न भी मानें। तो भी मैं अपने पथसे विचलित नहीं होऊंगा। उनके उसे अस्वीकार करनेसे अहिंसा असफल सिद्ध नहीं हो सकेगी। हां, अपनी अपूर्णताके

आरोपको मैं मान लूंगा। लेकिन सत्याग्रही अपने प्रयोगमें दूसरोंको शामिल होनेका न्यौता देनेसे पहले सम्पूर्णता प्राप्त करनेकी राह नहीं देखता; शर्त्त सिर्फ यह है कि उसकी श्रद्धा पहाड़की तरह अचल होनी चाहिये। डाक्टर रायडनके रिश्तेदारने जो सलाह उन्हें दी थी और जिसका उल्लेख अपनी सहमतिके साथ उन्होंने ऊपर किया है, बिलकुल गलत है। अगर युद्ध घृणास्पद है, तो उसमें शामिल होकर कोई उसकी बुराइयोंको कैसे दूर कर सकता है ? फिर चाहे आप आत्मरक्षाके लिए लड़नेवालोंके दलमें ही क्यों न शामिल हों और उसके लिए अपने प्राणोंको ही संकटमें क्यों न डाल दें ? क्योंकि आत्मरक्षा करनेवालोंको भी वे ही सब घृणित कार्य करने पड़ते हैं, जो कि दुश्मन करता है; और अगर दुश्मनपर विजय पाना है, तो वे सब काम दूने जोरसे करने पड़ते हैं। इस प्रकार प्राण गँवानेसे प्राण बचते तो नहीं, बल्कि व्यर्थ नष्ट होते हैं।

डाक्टर रायडनके गिरजाघरमें, जहाँ प्रार्थनाकी शक्तिके सम्बन्धमें जाग्रत श्रद्धाका खूब प्रचार होता है, मैं गया हूँ और उनके प्रार्थना प्रवचनमें हाजिर रहा हूँ। जब चारों तरफसे घोर अन्धकारने उन्हें घेर लिया था, तब उन्होंने आन्तरिक प्रार्थना द्वारा बल और आश्वासन और सच्चे कर्मकी प्रेरणा क्यों नहीं प्राप्त की ? आज भी स्थिति ऐसी नहीं है कि बिगड़ी सुधर न सके। उन्हें और उनके शान्तिवादी साथियोंको, जिनमें कइयोंसे परिचित होनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है, हिम्मतसे काम लेना चाहिये और कुछ समयके लिए जो श्रद्धा-शिथिल हो गयी थी, उसके लिए पीटरकी तरह पश्चात्ताप करके अपनी अहिंसा-विषयक पुरानी श्रद्धाको नये उत्साहके साथ जाग्रत करना चाहिये। उनकी इस जाग्रतिसे युद्ध-प्रयत्नकी कोई विशेष हानि न होगी, किन्तु युद्ध विरोधी प्रयत्नको बहुत गति प्राप्त होगी। यदि मनुष्यको मनुष्यकी तरह जीना है और वो पैरोंवाला पशु नहीं बन जाना है, तो यह प्रयत्न देरमें नहीं, बल्कि जल्दी ही सफल हुए बिना न रहेगा।

हरिजन-सेवक
५ अप्रैल, १९४२



अहिंसात्मक प्रतिकार

जापान हमारा दरवाजा खटखटा रहा है। अहिंसात्मक तरीकेसे हम इसका क्या जवाब देंगे ? अगर हिन्दुस्तान आजाद होता तो जापानको देशमें घुसनेसे रोकनेके लिए अहिंसक उपायोंसे काम लिया जा सकता था। परन्तु आजकी हालतमें तो हमारी भूमिपर पैर रखनेके साथ ही सत्याग्रह द्वारा उसका मुकाबिला किया जा सकता है। मसलन, सत्याग्रही उसे हर तरहकी मदद देनेसे इनकार करेंगे। पानी तक न देंगे। क्योंकि अपने देशको हड़पनेमें किसीकी मदद करना उनका कोई फर्ज नहीं होता। हाँ, अगर

कोई जापानी रास्ता भूल गया हो और प्याससे मर रहा हो, और एक इन्सानके नाते मदद माँगता हो, तो उस प्यासे जापानीको पानी देंगे क्योंकि सत्याग्रही किसीको अपना दुश्मन नहीं मान सकता। मान लीजिये कि जापानी, सत्याग्रहियोंको पानी देनेके लिए मजबूर करें, तो उस हालतमें उन्हे उनका विरोध करते करते मर मिटना होगा। यह सोचा जा सकता है कि वे तमाम सत्याग्रहियोंको मौतके घाट उतार देंगे। हमारे इस अहिंसात्मक प्रतिकारका आधार यह आस्था है कि आखिर आक्रमणकारी अहिंसक सत्याग्रहियोंको कतल करते करते मनसे और शरीरसे भी थक जायगा। वह सोचमें पड़ जायगा कि आखिर वह कौन-सी नयी (उसके नजदीक) ताकत है जो चोट पहुंचानेकी कोशिश तक नहीं करती और सहयोग देनेसे इनकार है? नतीजा यह होगा कि शायद वह और अधिक कतल न करेगा। लेकिन हो सकता है कि सत्याग्रही जापानियोंको अत्यन्त हृदयहीन पायें और देखें कि उन्हें इस बातकी जरा भी परवाह नहीं है कि वे कितनोंको कतल करते हैं। उस हालतमें भी जीत अहिंसक प्रतिकारियोंकी ही रहेगी, क्योंकि उन्होंने झुकनेके बजाय मर मिटना पसंद किया है।

लेकिन जिस तरह मैंने लिखा है, उस तरह बिलकुल आसानीसे यह सब नहीं हो जायगा। आज देशमें कमसे कम चार दल हैं। पहला दल अंग्रेजोंका और उनके द्वारा खड़ी की गयी फौजोंका है। जापानियोंने एलान किया है कि हिन्दुस्तान पर उनकी कोई नजर नहीं, उनका झगड़ा सिर्फ अंग्रेजोंके साथ है। इसमें उन्हें कई हिन्दुस्तानियोंकी, जो इस समय जापानमें हैं, मदद मिल रही है। उनकी तादादका अंदाज लगाना मुश्किल है, मगर जरूर काफी तादाद ऐसे लोगोंकी है, जो जापानी एलानपर भरोसा करते हैं और मानते हैं कि जापानी उन्हें अंग्रेजी हुकूमतके जुएसे आजाद करके अपने घर लौट जायंगे। अंग्रेजी हुकूमतका बोझ ढोते ढोते वे इतने थक चुके हैं, कि परिवर्त्तनकी दृष्टिसे फिर वह कितना ही बुरा क्यों न हो, वे जापानी जुएका भी स्वागत करनेको तैयार हो सकते हैं। यह दूसरा दल है। तीसरा दल तटस्थ लोगोंका है। वे अहिंसक तो नहीं हैं, फिर भी ब्रिटेन या जापान दोनोंमेंसे किसीकी भी मदद नहीं करना चाहते।

चौथा और आखिरी दल अहिंसक प्रतिकार करनेवालोंका है। अगर वे मुट्ठी भर भी रहें, तो उनका अहिंसक विरोध भविष्यके लिए एक उदाहरणस्वरूप ही रहेगा; इससे अधिक और कोई प्रभाव वह पैदा न कर सकेगा। वे शान्तिके साथ अपनी अपनी जगहपर अटल रहकर मर मिटेंगे, किन्तु आक्रमणकारीके आगे घुटने न टेकेंगे। वे वायदोंके धोखेमें न फंसेंगे। वे किसी तीसरे दलकी मददसे अंग्रेजी हुकूमतसे छुटकारा नहीं चाहेंगे। वे पूरी तरह अहिंसक युद्धके अपने तरीकेमें ही विश्वास रखेंगे, दूसरे किसीमें नहीं। उनकी लड़ाई उन करोड़ों बेजबान हिन्दुस्तानियोंके लिए है, जो जानते तक नहीं कि मुक्ति या आजादी किसे कहते हैं। उनके हृदयमें न अंग्रेजोंके प्रति कोई द्वेष है, न जापानियोंके लिए कोई खास प्रेम। वे उन दोनोंका उसी तरह भला चाहते हैं, जिस तरह सबोंका। वे तो यही चाहते हैं कि अंग्रेज व जापानी दोनों धर्मके मार्ग पर चलें। वे मानते हैं कि अकेली अहिंसा ही सब हालतोंमें दुनियाको ठीक रास्तेपर

चला सकती हैं। इसलिए यदि पर्याप्त साथियोंके अभावमें अहिंसाका ध्येय सिद्ध न हो, तो भी वे अपना मार्ग छोड़ें नहीं, बल्कि मरते दमतक उसपर डटे रहें।

अहिंसाके साधकोंके सामने आज एक कठिन साधना उपस्थित है। लेकिन जिन्हें अपने ध्येयमें श्रद्धा है, उन्हें कोई भी कठिनाई परास्त नहीं कर सकती।

एक विषम और लम्बी यातनाका समय हमारे सामने है। सत्याग्रहियोंको चाहिये कि वे असम्भव काम करनेकी कोशिशमें न पड़ें। उनकी बाह्य-शक्तियां सीमित हैं। मसलन- आज आसाम बहुत ही खतरेमें है, लेकिन केरलके सत्याग्रही सैनिककी यह जिम्मेदारी नहीं कि वह उसकी रक्षाके लिए वहाँ दौड़ा जाय। अगर आसाममें अहिंसात्मक वृत्ति है, तो वह अपने आपको अच्छी तरह संभाल लेगा। और अगर उसमें वह चीज नहीं है, तो केरलके अहिंसक सत्याग्रहियोंका कोई भी जत्था उसकी या किसी दूसरे प्रान्तकी मदद नहीं कर सकेगा। केरलवाले केरलमें ही अपनी अहिंसाका परिचय देकर आसाम वगैरहकी मदद कर सकते हैं। अगर जापानी फौजके पाँव हिन्दुस्तानमें जम गये, तो वह सिर्फ आसाममें ही नहीं अटकी रहेगी। अंग्रेजको हरानेके लिए उसे सारे देशमें छा जाना होगा। अंग्रेज चप्पा चप्पा जमीनके लिए लड़ेंगे। अगर हिन्दुस्तान उनके हाथसे निकल गया तो शायद यह कहा जा सकेगा कि उन्होंने अपनी पूरी पूरी हार कबूल कर ली है। लेकिन ऐसा हो, चाहे न हो, इतनी बात तो बिलकुल साफ है कि जापान तबतक दम न लेगा जबतक सारा हिन्दुस्तान उनके हाथमें न आ जाय। इसलिए अहिंसक प्रतिकारियोंको अपनी अपनी जगहपर ही रहना चाहिये।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना जरूरी है। जहां अंग्रेजी फौजकी 'दुश्मन' के साथ वास्तविक भिड़न्त हो रही हो, वहां सत्याग्रहियोंका सीधी तरह अहिंसक प्रतिकार करना शायद अनुचित होगा। अगर हिंसक और अहिंसक प्रतिकारका मिश्रण हो जाय या वे एक दूसरेके अंग बन जांय, तो वह प्रतिकार न रहेगा।

इसलिए जो बात मैं बारबार कहता रहा हूँ, उसीको फिर यहाँ दोहराता हूँ: दृढ़ निश्चयके साथ रचनात्मक कार्यक्रमको चलाना ही अहिंसात्मक काररवाईकी सबसे अच्छी तैयारी और तरीका है। जो कोई भी यह मान बैठेगा कि रचनात्मक कार्यक्रमके आधारके बिना भी वह अहिंसक बल दिखा सकेगा, परीक्षाके समय वह बुरी तरह नाकामयाब होगा। यह तो वैसी ही बात होगी कि कोई बिलकुल निहत्था और भूखका मारा आदमी किसी खा पीकर टंच और हथियारोंसे लैस सिपाहीका सामना करनेकी कोशिश करे। उसकी हार तो निश्चित ही है। मेरी रायमें, जिसे रचनात्मक कार्यक्रममें विश्वास नहीं, उसमें भूखसे पीड़ित करोड़ों देशवासियोंके प्रति कोई मूर्तिमन्त भावना नहीं। और जिसमें यह भावना नहीं, वह अहिंसक लड़ाई लड़ नहीं सकता। अपने जीवनमें मैंने यह पाया है कि ज्यों ज्यों मैं देशके दरिद्रनारायणोंके साथ तद्रूप होता गया, त्यों त्यों मेरी अहिंसाका विस्तार बढ़ता गया। अपनी कल्पनाकी अहिंसासे अब भी मैं बहुत दूर हूँ। क्योंकि मूक मानवताके साथ तन्मय होनेकी अपनी कल्पनासे मैं अभी बहुत दूर नहीं हूं क्या ?

हरिजन-सेवक
१२ अप्रैल, १९४२

अहिंसा धर्म या साधन

सवाल—कई साल पहले मैंने आपसे पूछनेकी धृष्टता की थी कि चूंकि आपने अहिंसाको कांग्रेसमें धर्मके रूपमें नहीं बल्कि साधनके रूपमें स्थान दिया है, इसलिये क्या यह डर नहीं है कि ऐन आजमाइशके मौकेपर यह अहिंसा बेकार हो जाय? आपने कहा था, 'मैं ऐसा नहीं समझता।' क्या अब भी आपका यही विचार बना हुआ है? क्या आप आज अहिंसाके माननेवालोंका एक ऐसा मण्डल नहीं खड़ा कीजियेगा, जिसे आप छोटे छोटे दलोंमें सारे देशमें भेज सकें? आज तो प्रायः यही मालूम होता है कि हमने समय खोया है और अब हम इतने तैयार नहीं हैं कि जिम्मेदारी उठा सकें।

जवाब—हां, अपनी इस रायपर मैं कायम हूं कि कांग्रेसके सामने अहिंसाको साधनके रूपमें पेश करके मैंने ठीक ही किया था। अगर मुझे अहिंसाको राजनीतिमें दाखिल करना था, तो जो मैंने किया, उससे भिन्न मैं कुछ कर ही न सकता था। दक्षिण अफ्रीकामें भी मैंने उसे साधनकी दृष्टिसे ही दाखिल किया था। वहाँ वह सफल हुई, क्योंकि सत्याग्रहियोंकी संख्या कम थी और उन्हें छोटेसे क्षेत्रमें काम करना था, इससे उन्हें आसानीके साथ अंकुशमें रखा जा सकता था। यहाँ हम एक विशाल देशमें फैले हुए अनगिनत लोग थे। फलतः उन्हें न तो आसानीसे अंकुशमें रखा जा सकता था, न तालीम दी जा सकती थी; तिसपर भी—जिस तरह काम करके दिखाया, वह अद्भुत था। वह इससे भी अच्छा काम और अच्छा परिणाम दिखा सके होते लेकिन जो फल मिला, उसके लिए मेरे मनमें थोड़ी भी निराशा नहीं है। यदि मैंने अहिंसाको धर्म माननेवाले व्यक्तियोंसे आरम्भ किया होता, तो शायद मुझे एक अपनेसे ही उसकी समाप्ति करनी पड़ती। मैं स्वयं अपूर्ण था, अपूर्ण स्त्री-पुरुषोंसे मैंने उसका आरम्भ किया था और एक अनजान-अछूते समुद्रमें मैं चल पड़ा था। भले जहाज अपने मुकामपर न पहुंचा हो, पर यह तो साबित हो चुका है कि वह आँधी-तूफानका ठीक ठीक सामना कर सकता है, और यह ईश्वर की कृपा है।

हरिजन-सेवक
१९ अप्रैल, १९४२



अगर वे आ जायं

प्रश्न —(१) अगर जापानी आ जायं, तो हम अहिंसा द्वारा उनका मुकाबला किस तरह करेंगे ?

प्रश्न—(२) अगर हम उनके हाथ पड़ जायं, तो हमें क्या करना चाहिये ?

उत्तर—(१) ये प्रश्न आन्ध्र देशसे आये हैं, जहाँ लोग सचमुच या भ्रमवश यह महसूस करते हैं कि हमला शीघ्र ही होनेवाला है। मैंने अपना उत्तर इन पृष्ठोंमें पहले ही दे दिया है। उन्हें न हम खाने-पानीका सामान देंगे, न रहने के लिए जगह, और न उनसे लेन देनका कोई सम्बन्ध ही रखेंगे। उन्हें यह लगना चाहिये कि हम उन्हें यहाँ बिलकुल नहीं चाहते। परन्तु मैं मानता हूँ कि व्यवहारमें यह बातें उतनी सीधी और आसान नहीं, जितनी इस प्रश्नसे और मेरे इस उत्तरसे लगती हैं। यह समझना कि जापानी मित्रभावसे यहाँ आयंगे, केवल एक जड़-मान्यता है। किसी भी आक्रमणकारीने आजतक यह नहीं किया। वे तो जहाँ जाते हैं, वहाँकी जनतापर मौत और तबाही ही बरसाते हैं, और जो कुछ उन्हें चाहिये, लूट-खसोट कर ले जाते हैं। इसलिए अगर किसी जगह लोग प्रचण्ड आक्रमणका सामना नहीं कर सकते, और मरनेसे डरते हैं, तो उन्हें ऐसी जगहसे चले जाना चाहिये, ताकि दुश्मन उनसे जबरदस्ती बेगार न ले सकें।

(२) अगर कुछ लोग दुर्भाग्यवश युद्धके बंदी बना लिये जायं या वैसे ही दुश्मनके हाथ पड़ जायं, तो हुक्म पाकर वे बेगार करनेसे इनकार करनेपर गोलीसे उड़ा दिये जा सकते हैं। अगर बंदी हंसते मुंह मौतका सामना करते हैं, तो वे कर्त्तव्यमुक्त हो जाते हैं। वे अपनी और अपने देशकी लाज रख चुकते हैं। अगर सशस्त्र मुकाबला भी करते, तो भी इससे बढ़कर और वे क्या कर सकते थे ? बहुत करते तो इतना ही कि चंद जापानियोंको कत्ल कर डालते और बदलेकी कारर्वाईके तौरपर उनके भयंकर अत्याचारोंको खामखाह न्यौतते।

अगर हम जिन्दा पकड़ लिये जायं और शत्रु हमें अपने अधीन बनानेके लिए अकल्पनीय तकलीफें दे, तब अलबत्ता मामला ज्यादा पेचीदा हो जाता है। उस सूरतमें हम न तो उसकी यन्त्रणाके वश होंगे और उसके हुक्मके आगे सिर झुकायेंगे बल्कि उसका मुकाबला करते करते अपनी जानपर खेल जायंगे और अपने मानकी रक्षा कर लेंगे। लेकिन हमें बतलाया गया है कि दुश्मन हमें जानपर खेल जाने भी न देगा, क्योंकि उसका हेतु तो यह है कि वह हम पर ज्यादासे ज्यादा जुल्म कर सके, जिससे दूसरे नसीहत लें।'

परन्तु मैं समझता हूँ कि अगर कोई व्यक्ति अमानुषी यातनाओंकी अपेक्षा सचमुच मृत्युको अच्छा समझता है, तो वह इज्जतके साथ मरनेका कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेगा।

हरिजन-सेवक
१४ जून, १९४२

अहिंसाका क्या होगा?

प्रश्न---परन्तु अपनी अहिंसाके बारेमें आप क्या कहते हैं? स्वतंत्रता मिलनेके बाद आप किस हद तक अपनी इस नीतिको अमलमें लायेंगे?

उत्तर---यह सवाल आज उठता ही नहीं। अपने इन लेखोंमें मैं प्रथम पुरुष एक वचनका जो प्रयोग करता हूँ, सो तो जगह बचानेके लिए है। मेरी कोशिश हिन्दुस्तानकी भावना प्रकट करनेके लिए है। हिन्दुस्तान एक बड़ा मुल्क है, जिसमें हिंसक अहिंसक सब हैं। हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय सरकार क्या नीति अख्तियार करेगी, मैं नहीं कह सकता। सम्भव है, अपनी प्रबल इच्छाके रहते हुये भी मैं तबतक जीवित ही न रहूं। लेकिन अगर उस वक्त तक मैं जिन्दा रहा तो अपनी अहिंसक नीतिको यथासम्भव सम्पूर्णताके साथ अमलमें लानेकी सलाह दूंगा। विश्वकी शान्ति और नव-विधानकी स्थापनामें यही हिन्दुस्तानका सबसे बड़ा हिस्सा भी होगा। मुझे आशा तो यह है कि चूंकि हिन्दुस्तानमें इतनी लड़ाकू जातियां हैं, और चूंकि स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी सरकारके निर्णयमें उन सबका हिस्सा होगा, इस-लिए हमारी राष्ट्रीय नीतिका झुकाव मौजूदा सैन्यवादसे भिन्न किसी अन्य प्रकारके सैन्यवादकी तरफ होगा। मैं यह उम्मीद तो जरूर ही रखूंगा कि एक राजनीतिक शस्त्रकी हैसियतसे अहिंसाकी व्यावहारिक उपयोगिताका हमारा पिछला बाईस सालका प्रयोग बिलकुल विफल नहीं जायगा और सच्चे अहिंसावादियोंका एक मजबूत दल हिन्दुस्तानमें पैदा हो जायगा। जो कुछ भी हो, लेकिन अगर स्वतन्त्र हिन्दुस्तानके साथ मित्र राज्योंकी सन्धि हो जाय, तो वह उनके ध्येयके लिए जरूर ही बड़ी मददगार साबित होगी। जब कि मौजूदा गुलामीकी हालतमें तो वह युद्ध-प्रयासमें बंधके ही हो सकता है, और असम्भव नहीं कि ऐन आनबानके मौकेपर वह वास्तविक खतरेका कारण साबित हो।

हरिजन-सेवक
२१, जून, १९४२



एक चुनौती

मेरे सामने डाकसे आये हुए तीन खत पड़े हैं। इन खतोंमें मुझे इस बातके लिए झिड़का गया है कि मैं सिन्ध जाकर हूरोंसे फ़ौरन बातचीत क्यों नहीं करता? इनमेंसे दो तो दोस्ताना ढंगके हैं। तीसरेके लेखक एक आलोचक हैं, जिन्हें अहिंसामें श्रद्धा नहीं है। इस तीसरे पत्रका जवाब देनेकी जरूरत मालूम पड़ती है। पत्रका मुख्य अंश इस प्रकार है:

"मैं गहरी दिलचस्पीके साथ आपके लेख पढ़ता रहता हूँ, क्योंकि मैं देखना चाहता

हूं कि आपके अन्ध-भक्तोंपर और अज्ञान जनतापर उसका क्या असर पड़ता है। खास
मैं आपका आभारी हूंगा, यदि आप नीचे लिखे मुद्दोंपर कुछ रोशनी डाल सकें, खास
तौरपर तीसरे और चौथे मुद्दोंपर, जो अहिंसाके बारेमें बुनियादी और नये सवाल
पेश करते हैं।

"आप अपने आश्रममें बहुतेरे सत्याग्रहियोंको तैयार करते रहे हैं। उन्हें आपकी सीधी देखरेखका और शिक्षाका लाभ मिलता ही होगा। आप पुकार पुकार कर यह कहते आये हैं कि अहिंसाके जरिये हिंसाका सामना प्रभावशाली ढंगसे किया जा सकता है। आज पूर्वमें जापानियोंके हमले और पश्चिममें हूरोंकी बगावत शुरू हो चुकी है। जिस अहिंसाका उपदेश आप एक अरसेसे करते आये हैं, और जिसको आचरणमें लानेके लिए कई दिनोंसे अनुकूल अवसरकी राह देखी जाती रही है, क्या उसपर अमल करनेका यह मौका नहीं है?

"लेकिन कुछ कर दिखानेके बदले आप तो 'हरिजन'में लेख लिखकर ही सन्तुष्ट हो रहते हैं। अगर हिटलर और स्तालिन भी अपनी फौजको जगह जगह भेजनेके बदले 'प्रवदा'में या ऐसे ही किसी दूसरे अखबारमें सिर्फ लेख ही लिखा करें, तो आप उन्हें क्या कहियेगा? सिन्धकी धारासभाके सदस्योंको इस्तीफे देकर हूरोंके बीच जानेकी सलाह देनेके बदले आप अपने तालीमयाफ्ता सत्याग्रहियोंके एक दलको वहां भेजकर अपने सिद्धान्त-की परीक्षा क्यों नहीं करते?

"क्या सत्याग्रहियोंका अपना यह धर्म या कर्तव्य नहीं है कि वे देशमें जहां कहीं उपद्रव हो, वहां जाकर उसका सामना करें? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि जब आपके आश्रमपर संकट आ खड़ा होगा, तभी उसका सामना किया जायगा, उससे पहले नहीं? और अगर यही बात हो तो क्या आपका सिद्धान्त निष्क्रियताका सिद्धान्त नहीं बन जाता?"

मुझे इसमें कोई शक नहीं कि अगर मैं खुद सिन्ध जा सकता, तो अवश्य ही कुछ न कुछ कर सका होता। पहले मैं ऐसे काम कर चुका हूं और उनमें कुछ सफल भी हुआ हूं। अब मैं इतना बूढ़ा हो गया हूं कि इस तरहकी यात्रा नहीं कर सकता। जो थोड़ी ताकत मुझमें बची है, उसे मैं अपनी उस लड़ाईके लिए सुरक्षित रख रहा हूं, जो मुझे अपने जीवनकी आखिरी लड़ाईसी मालूम होती है।

मैंने अपने जीवनका यह ध्येय कभी नहीं बनाया कि जहां जहां लोगोंपर संकट आये, वहां वहां पहुंचकर मैं उन्हें संकटसे मुक्त करूं, और पुराने जमानेके शूर सामन्तोंकी तरह इसे अपना एक पेशा ही बना लूं। मैं तो नम्रतापूर्वक लोगोंको यह बतानेकी कोशिश करता रहा हूं कि वे खुद अपनी कठिनाइयोंको किस तरह हल कर सकते हैं। सिन्धके बारेमें मैं फिर कहता हूं कि मेरी सलाह सच ही है। कांग्रेसजनोंका यह स्पष्ट कर्त्तव्य था कि वे हूरोंके प्रदेशमें जाते और उनको शान्तिके मार्गपर लानेकी कोशिशमें अपने आपको खपा देते। अगर अहिंसामें उन्हें श्रद्धा न थी, तो वे हथियारोंका भी उपयोग कर सकते थे। अहिंसाके

बंधनसे मुक्त होनेके लिए उन्हें कांग्रेससे भी इस्तीफा दे देना चाहिये था। अगर हमें स्वतन्त्र बननेकी क्षमता प्राप्त करनी है, तो अहिंसासे हो या हिंसासे, आत्मरक्षाकी कला हमें सीखनी ही होगी। हरएक नागरिकको यह सीखना चाहिये कि दुःखमें अपने पड़ोसी-की मदद करना उसका धर्म है।

अगर मैं इन आलोचकोंके सुझाये हुए तरीकोंको अख्तियार करता तो लोगोंको परोपजीवी बनानेमें ही सहायक हुआ होता। इसलिए यह अच्छा ही हुआ कि मैंने दूसरों-की रक्षा करनेकी तालीम नहीं ली। अगर मरनेके बाद मेरे लिए यह कहा जा सके कि मैंने अपने जीवनका अधिकांश लोगोंको स्वावलम्बी बनानेमें और प्रत्येक परिस्थितिमें आत्मरक्षाकी शक्ति प्राप्त करनेका मार्ग दिखानेमें ही बिताया, तो उससे मुझे सन्तोष होगा।

पत्र-लेखकने यह सोचकर बड़ी भूल की है, कि लोगोंको संकटसे बचाना ही मेरे जीवनका ध्येय है। इस तरहका दावा तो डिक्टेटर ही करते हैं। लेकिन कोई तानाशाह अभीतक यह साबित नहीं कर सका कि उसका यह दावा सच है।

यही नहीं पत्र-लेखक तो मेरे बारेमें यह भी मानते हैं कि जब आश्रमपर ऐसा कोई संकट आ पड़ेगा, तो वह भली भांति उसका प्रतिकार कर सकेगा। अगर ऐसा हुआ तो मुझे बहुत ही सन्तोष होगा और मैं मानूंगा कि मेरा जीवन-कार्य पूरी तरह सफल हुआ। लेकिन मैं तो इसका भी दावा नहीं कर सकता। सेवाग्रामका आश्रम तो सिर्फ कहनेको ही 'आश्रम' है। लोगोंने उसे आश्रम कहना शुरु किया, और आश्रम नाम चल पड़ा। असलमें तो वह ऐसे पचरंगी लोगोंका जमघट है, जो भिन्न भिन्न उद्देश्योंको लेकर वहाँ आते और रहते हैं। समान उद्देश्यको लेकर स्थायी रूपसे रहनेवाले तो उनमें मुश्किलसे पाँच-छः जन ही होंगे। परीक्षाका समय आनेपर ये थोड़ेसे लोग किस हदतक खरे उतरेंगे, सो तो अभी देखना बाकी है।

बात यह है कि अहिंसा ठीक उसी तरह काम नहीं करती, जिस तरह हिंसा करती है। उसका तरीका उलटा है। सशस्त्र आदमी स्वभावतः अपने शस्त्रोंपर आधार रखता है। जो मनुष्य जान बूझकर निःशस्त्र बन जाता है, वह उस अदृश्य शक्तिपर आधार रखता है, जिसे कवि अपनी भाषामें—'ईश्वर' और वैज्ञानिक 'अज्ञात' कहते हैं। लेकिन 'अज्ञात' का अर्थ 'अभाव' ही नहीं करना चाहिये। जो सभी ज्ञात और अज्ञात शक्तियोंका आधार स्वरूप है, वही ईश्वर है। इस आधार स्वरूपिणी शक्तिमें जिस अहिंसाका विश्वास नहीं, वह अहिंसा कूड़े करकटकी तरह निकम्मी चीज है।

मुझे आशा है कि आलोचक सज्जन अपने प्रश्नके गर्भमें रही हुई भूलको समझ सकेंगे। और साथ ही यह भी अनुभव करेंगे कि जिस सिद्धान्तपर मैंने अपने जीवनका निर्माण किया है, वह निष्क्रियताका नहीं; बल्कि अतिशय क्रिया-शीलताका सिद्धान्त है।

दरअसल तो उन्हें अपने सवाल इन शब्दोंमें पूछना चाहिये था: "आप बाईस बरससे

हिन्दुस्तानमें काम कर रहे हैं, फिर भी क्या वजह है कि आप अबतक इतनी तादादमें ऐसे सत्याग्रहियोंको तैयार नहीं कर सके जो बाहरी और भीतरी संकटोंका सामना कर सकें ?" इसके जवाबमें मैं यही कहूंगा कि एक समूचे राष्ट्रको अहिंसक शक्तिकी तालीम देनेके लिए बाईस सालका समय कुछ भी नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं कि उचित अवसर आनेपर काफी तादादमें लोग इस शक्तिका परिचय दे ही न सकेंगे। यह अवसर अब आया प्रतीत होता है। इस लड़ाईमें आम जनताके साथ सैनिकोंकी और हिंसाके साथ अहिंसाकी भी समान रूपसे परीक्षा हो रही है।

हरिजन-सेवक
२८ जून, १९४२

(हरिजन-सेवक १५ अगस्त, १९४२ से १० फरवरी १९४६ तक बन्द था)

द्वेष कैसे मोड़ें ?

हवामें द्वेष छा गया है। और अधीर देशभक्त, अगर ऐसा मुमकिन हो तो, आजादीके मकसदको आगे बढ़ानेके लिए हिंसाके जरिये भी उसका खुशीसे उपयोग कर लेना पसंद करेंगे। मेरा कहना यह है कि यह बात किसी भी वक्त और हर कहीं गलत होगी। मगर जिस देशमें आजादीके लिए लड़नेवालोंने दुनियाके आगे यह घोषित कर दिया कि उनकी नीति सत्य और अहिंसाकी नीति है, वहाँ तो ऐसा करना और भी गलत और नामुनासिब होगा। उनका कहना है कि द्वेषको मुहब्बत यानी प्यारमें नहीं बदला जा सकता। जो लोग हिंसाको मानते हैं, वे सहज ही यों कहकर इसका उपयोग करेंगे : 'अपने दुश्मनको मार डालो, उसे और उसकी सम्पत्तिको जरूरतके मुताबिक खुले तौरपर या छिपकर, जैसे भी मुमकिन हो नुकसान पहुँचाओ।' इसका नतीजा यह होगा कि दोनों तरफसे बदलेका दौरदौरा होगा। पिछला महायुद्ध, जिसकी चिनगारियाँ अभी तक ठंडी नहीं पड़ी हैं, द्वेषके प्रयोगके दिवालियेपनकी जोरोंसे घोषणा कर रहा है। और अभी यह देखना बाकी है कि कथित विजेता सचमुचमें विजयी हुए हैं या कि अपने दुश्मनोंको गिरानेकी कोशिश और चाहमें खुद ही कहीं गिर गए हैं। आखिर यह एक बुरा खेल है। इस देशके कुछ कर्मठ विचारक कामके तरीकेमें कुछ सुधार सुझाते हुए कहते हैं : "हम अपने दुश्मनको तो कभी नहीं मारेंगे, मगर उसकी सम्पत्तिको जरूर बरबाद करेंगे।" जब मैं यह कहता हूँ कि यह 'उसकी सम्पत्ति है' तो मैं शायद उसके साथ अन्याय करता हूँ; क्योंकि यह ध्यान देनेकी बात है कि कथित शत्रु साथमें अपनी कोई सम्पत्ति नहीं लाया है और जो थोड़ी बहुत लाया भी है, उसकी हमसे कीमत वसूल करता है। इसलिए जिसे हम बरबाद करते हैं वह तो दरअसल हमारी ही सम्पत्ति है। उसका ज्यादातर हिस्सा चाहे वह आदमियोंकी सूरतमें हो या चीजोंकी, वह यहीं पैदा करता है। इसलिए

जो बात है, वह यही कि सम्पत्तिपर उसका कब्जा है। इस सम्पत्तिकी बरबादीका मुआवजा हमें नाकके बल देना पड़ता है। और बेगुनाहोंको उसकी कीमत चुकानी पड़ती है। ताजीरी टैक्स या दण्डात्मक कर और उससे जुड़ी हुई ज्यादतियोंका यही मतलब होता है। इसलिए वह अहिंसा, जिसमें किसीको न मारना ही शामिल हो, मुझे हिंसात्मक तरीकेसे बेहतर नजर नहीं आती। उसका मतलब है—धीरे धीरे सताना। और जबतक यह धीमापन बेकार हो जायगा, तो हम फौरन मारने पर उतारू हो जायंगे और परमाणु-बमका इस्तेमाल करने लगेंगे जो कि हिंसाका आखिरी हथियार है। इसलिए सन् १९२०में मैंने द्वेषको ठीक दिशामें मोड़नेके लिए अहिंसा और उसके लाजिमी जोड़ीदार सत्यका प्रयोग सुझाया था।

द्वेष करनेवाला द्वेषकी खातिर द्वेष नहीं करता, यानी इसलिए करता है कि वह द्वेषपात्र था, आदमियोंको अपने देशसे निकाल देना चाहता है। इसलिए वह हिंसक तरीकेकी तरह अहिंसक तरीकेसे भी अपना मकसद हासिल कर लेगा। पिछले २५ वर्षोंसे राजी या नाराजीसे, कांग्रेस अपनी खोयी हुई आजादीको हासिल करनेके लिए जनताके सामने हिंसाके मुकाबले अहिंसाकी हिमायत करती रही है। हमने जो तरक्की की है, उससे देख लिया है कि अहिंसाके जरिये हम जितनी जल्दी और जितना ज्यादा जनताके दिलको जगा सके हैं उतना पहले कभी नहीं कर सके थे। फिर अगर सच कहें तो और सच कहना ही चाहिए——हमारी अहिंसक कार्रवाई अधकचरी ही रही है। कितनों ने दिलमें हिंसाको छिपाये रखकर केवल जबानसे अहिंसाका उपदेश दिया। किन्तु सीधी सादी जनताने हमारे दिलोंमें छिपे हुए भावोंका मतलब समझ लिया और उसकी अनजानी प्रतिक्रिया वैसी नहीं हुई, जैसी होनी चाहिये थी। दम्भने सद्‌गुणकी प्रशंसा तो की है, किन्तु वह सद्‌गुणकी जगह नहीं ले सकता था। इसलिए मैं अहिंसा पर ज्यादा जोर देता हूं। मैं अज्ञानवश ऐसा नहीं करता, बल्कि उसके पीछे मेरा साठ सालका अनुभव है। यह नाजुक वक्त है। आज जनता भूखों मर रही है। देशकी मौजूदा जरूरतोंमें अहिंसाका प्रयोग किस तरह किया जाय, बुद्धिमान पाठकको इसके अनेक उपाय सूझ जायेंगे।

आजाद हिन्द फौजका जादू हमपर छा गया है। नेताजीका नाम अपने लायक बन गया है। उनकी देशभक्ति किसीसे कम नहीं है। (वर्तमानकालका प्रयोग मैं जानबूझकर कर रहा हूँ)। उनकी बहादुरी उनके सारे कामोंमें चमक रही है। उनका मकसद बुलन्द था पर वे नाकामयाब रहे। नाकामयाब कौन नहीं रहा? हमारा काम तो यह देखना है कि हमारा मकसद बुलन्द हो, और हम नेक मकसद हों। सफलता यानी कामयाबी हासिल कर लेना हर किसीके भाग्यमें नहीं लिखा होता। इससे ज्यादा तारीफ मैं नहीं कर सकता क्योंकि मैं जानता था कि उनका काम विफल होने ही वाला है, और अगर वह अपनी आजाद हिन्द फौजको विजयी बनाकर हिन्दुस्तानमें ले आये होते, तो भी मैंने यही कहा होता, क्योंकि इस तरह आम जनता अपने अधिकारोंको न पा सकी होती। नेताजी और उनकी फौज हमको जो सबक सिखलाती है, वह तो त्यागका, जात-पाँतके भेदसे रहित एकता और अनुशासनका सबक है। अगर उनके प्रति हमारी भक्ति समझदारी

और विवेकपूर्ण होगी तो हम उनके इन तीनों गुणोंको पूरी तरह अपनायेंगे। लेकिन हिंसा-का तो बिलकुल त्याग ही करेंगे।

मैं यह नहीं चाहूँगा कि आजाद हिन्द फौजका आदमी यह सोचे या कहे कि वह या उसके साथी हिन्दुस्तानकी जनताको हथियारोंके जरिये गुलामीसे छुटकारा दिलवा सकते हैं। लेकिन वह अगर नेताजीका और उनसे भी ज्यादा देशके वफादार हैं, तो वह जनताको—स्त्री, पुरुष और बच्चोंको—बहादुर बनने और त्याग करने, और एक हो जानेकी शिक्षामें अपनी ताकत खर्च करेगा। तभी हम दुनियाके आगे कमर सीधी करके खड़े हो सकेंगे। लेकिन अगर वह केवल हथियारबन्द सैनिक ही बना रहा, तो वह जनताके सिरपर सवारी ही गाँठेगा और तब उसके स्वयंसेवकपनेकी कोई ज्यादा कीमत न रह जायगी। इसलिए मैं कप्तान शाहनवाजके इस बयानका स्वागत करता हूँ कि नेताजीके योग्य अनुयायी बननेके लिए, हिन्दुस्तानकी धरती पर आनेके बाद, वह कांग्रेसकी सेनामें एक विनीत, अहिंसक सिपाही बनकर काम करेंगे।

हरिजन सेवक
२४ फरवरी, १९४६



सवाल जवाब

सवाल—आप तो मछली खानेवालोंको मछली खिलानेकी बात लिखते हैं? क्या खानेवाला हिंसा नहीं करता? खिलानेवाला उसमें भागीदार नहीं बनता?

ज०—दोनोंमें हिंसा भरी है। भाजी खानेवाला भी हिंसा करता है। जगत हिंसामय है। देह धारण करनेका मतलब है, हिंसामें शरीक होना। ऐसी हालतमें अहिंसा धर्मका पालन करना है। वह किस तरह किया जाय, सो मैं कई बार बता चुका हूँ। मछली खानेवालेको जबरदस्ती मछली खानेसे रोकनेमें बहुत ज्यादा हिंसा है। मछली मारनेवाले, मछली खानेवाले, और मछली खिलानेवाले जानते भी नहीं कि वे हिंसा करते हैं। और अगर जानते भी हैं, तो उसे लाजिमी समझ कर उसमें भाग लेते हैं। लेकिन जबरदस्ती करनेवाला घोर हिंसा करता है। बलात्कार अमानुषी कर्म है। जो लोग आपसमें लड़ते हैं, जो धन कमाते समय आगा-पीछा नहीं सोचते, जो दूसरोंसे बेगार लेते हैं, जो ढोरों या मवेशियोंपर हदसे ज्यादा बोझ डालते हैं, उन्हें लोहेकी या दूसरी किसी आरसे गोदते हैं, वे जानते हुए भी ऐसी हिंसा करते हैं जो रोकी जा सकती है। मछली या मांस खानेवालोंको ये चीजें खाने देनेमें जो हिंसा है, उसे मैं हिंसा नहीं मानता। मैं उसे अपना धर्म समझता हूँ। अहिंसा परम धर्म ही है। हम उसका पूरा पूरा पालन न कर सकें तो भी उसके सच्चे स्वरूपको समझ कर हिंसासे जितना बच सकें, बचें।

हरिजन सेवक
२४ मार्च, १९४६

दया और निर्दयता

दयाकी निर्दयताके सामने, अहिंसाकी हिंसाके सामने, प्रेमकी द्वेषके सामने और सत्यकी झूठके सामने ही परीक्षा हो सकती है। यह बात सही हो तो यह कहना गलत होगा कि खूनीके सामने अहिंसा बेकार है। हाँ, यों कह सकते हैं कि खूनीके सामने, अहिंसाका प्रयोग करना अपनी जान देना है। लेकिन इसीमें अहिंसाकी परीक्षा है। विशेषता इसकी यह है कि जो लाचारीसे मर जाता है, वह अहिंसाकी परीक्षामें पास नहीं होता। जो मरते हुये भी खूनीपर क्रोध नहीं करता, और मनमें उसके लिए ईश्वरसे क्षमा भी माँगता है, वही अहिंसक है। ईसा मसीहके बारेमें इतिहास यही कहता है। जिन्होंने उन्हें सूलीपर चढ़ाया, मरते-मरते भी उन्होंने उनके लिए ईश्वरसे प्रार्थना की : "हे ईश्वर! जिन्होंने मुझे सूलीपर चढ़ाया है, उन्हें तुम माफ करना।" ऐसी दूसरी मिसालें सब धर्मोंमें मिल सकती हैं। लेकिन क्राइस्टकी यह बात सारे संसारमें मशहूर है।

यह एक अलग बात है कि ऊपर बतायी हुई हदतक हमारी अहिंसा न पहुँची हो। अपनी कमजोरीके कारण या इसलिए कि हमें अनुभव नहीं है, हम अहिंसाकी भव्यताको नीचे न उतारें। यह ठीक नहीं होगा। हमारी समझ ही उलटी हो, तो हम उसकी आखिरी चोटी तक नहीं पहुँच सकते। इसलिए अहिंसाकी शक्तिको बुद्धिसे जानना जरूरी है।

हरिजन-सेवक
२८ अप्रैल, १९४६

❀

अहिंसक सेवा-दल

एक बार मेरे सुझानेसे ही शान्तिदल कायम करनेकी कोशिश हुई थी। लेकिन उसका कोई नतीजा नहीं निकला। उनसे इतना सीखनेको मिला कि शांतिदल बड़े पैमानेपर काम नहीं कर सकते। बड़े बड़े दलोंको चलानेके लिए सजा नहो, तो सजाका डर होना चाहिये और जरूरत मालूम होनेपर सजा भी दी जानी चाहिये। ऐसे हिंसक दलमें आदमीके चाल-चलनको नहीं देखा जाता। उसके कद और डीलडौलको ही देखा जाता है। अहिंसक दलमें ठीक इससे उलटा होता है। उसमें शरीरकी जगह गौण होती है। शरीर ही सब कुछ नहीं है, यानी चरित्र सब कुछ है। ऐसे चरित्रवान्को पहचानना मुश्किल है। इसलिये बड़े-बड़े शांतिदल कायम नहीं किये जा सकते। वे छोटे ही होंगे। हर गाँव या हर मुहल्लेमें होंगे। मतलब यह कि जो जाने-पहचाने लोग हैं, उन्हींकी टुकड़ियाँ बनेंगी। वे मिलकर

अपना एक मुखिया चुन लेंगे। सबका दरजा बराबर होगा। जहाँ एकसे ज्यादा आदमी एक ही तरहका काम करते हों, वहाँ उनमें एकाध ऐसा होना चाहिये, जिसके हुक्मके मुताबिक सब कोई चल सकें। ऐसा न हो, तो मेलजोलके साथ, सहयोगसे, काम न हो सकेगा। दो या दोसे ज्यादा लोग अपनी मरजीसे काम करें तो मुमकिन है कि उनके कामकी दिशा (सिम्त) एक दूसरेसे उलटी हो। इसलिये जहाँ दो या दोसे ज्यादा दल हों वहाँ वे हिलमिलकर काम करें, तभी काम चल सकता है, और उसमें कामयाबी हो सकती है।

इस तरहके शान्तिदल जगह जगह हों, तो वे आरामसे, आसानीसे, दंगा-फसाद होनेसे रोक सकते हैं। ऐसे दलोंको अखाड़ेमें दी जानेवाली सभी तरहकी तालीम देना जरूरी नहीं। उसमेंकी कुछ तालीम लेना जरूरी हो सकता है।

सब शान्तिदलोंके लिये एक चीज आम यानी सामान्य होनी चाहिये। शान्तिदलके हर एक मेम्बरका ईश्वरमें अटल विश्वास होना चाहिये। उसमें यह श्रद्धा होनी चाहिये कि ईश्वर ही सबका सच्चा साथी है और वह सबका सिरजनहार है, कर्ता है। इसके बिना जो शान्ति-सेनाएँ बनेंगी, मेरे ख्यालमें बेजान होंगी। ईश्वरको आप अल्लाहके नाम पहचानें, अहुरमज्द कहें, जीहोवा कहें, जीता-जागता कायदा कहें, राम कहें, रहमान कहें, किसी भी नामसे पुकारें, मगर उनकी शक्तिका उपयोग तो आपको करना ही है। ऐसा आदमी किसीको मारेगा नहीं, बल्कि खुद मरकर जीतेगा और जी जायगा।

जिस आदमीके लिये यह कानून एक जीती-जागती चीज बन जायगी, उसको वक्तके मुताबिक अक्ल भी अपने आप सूझती रहेगी।

फिर भी अपने तजुरबेसे यहाँ कुछ नियम देता हूँ।

(१) सेवक अपने साथ कोई हथियार न रखे।

(२) वह अपने बदनपर ऐसी कोई निशानी रखे, जिससे फौरन पता चल जाय कि वह शान्तिदलका मेम्बर है।

(३) सेवकके पास घायलों वगैरहकी सार-संभालके लिये तुरंत काम देनेवाली चीजें रहनी चाहिये। जैसे पट्टी, कैंची, छोटा चाकू, सूई वगैरा।

(४) सेवकको ऐसी तालीम मिलनी चाहिये, जिससे वह घायलोंको आसानीसे उठाकर ले जा सके।

(५) जलती आगको बुझानेकी, बिना जले या झुलसे आगवाली जगहमें जानेकी, ऊपर चढ़ने और उतरनेकी कला सेवकमें होनी चाहिए।

(६) अपने मुहल्लेके सब लोगोंसे उसकी अच्छी जान पहचान होनी चाहिए। यह खुद ही एक सेवा है।

(७) उसे मन ही मन रामनामका बराबर जाप करते रहना चाहिए और इसमें माननेवाले दूसरोंको भी ऐसा करनेके लिये समझाना चाहिए।

कुछ लोग आलसकी वजहसे या झूठी आदतकी वजहसे यह मान बैठते हैं कि ईश्वर तो है ही, वह बिना माँगे मदद करता है, फिर उसका नाम रटनेसे क्या फायदा? हम ईश्वरकी हस्तीको कबूल करें या न करें, इससे उसकी हस्तीमें कोई कमी-बेशी नहीं

होती, यह सच है। फिर भी उस हस्तीका उपयोग तो अभ्यासी ही कर पाता है। हर एक भौतिक शास्त्रके लिये यह बात सौ फी सदी सच है, तो फिर अध्यात्मके लिये तो यह उससे भी ज्यादा सच होना चाहिये। फिर भी हम देखते हैं कि इस मामलेमें हम तोतेकी तरह राम-नाम रटते हैं और फलकी आस रखते हैं। सेवकमें इस सच्चाईको अपने जीवनमें सिद्ध करनेकी ताकत होनी चाहिए।

हरिजन-सेवक
५ मई, १९४६

कुछ सवाल

लंदनके एक भाईने अहिंसाके अमलके बारेमें सात सवाल पूछे हैं। हालांकि 'यंग इंडिया' और 'हरिजन'में इस तरहके सवालोंके जवाब दिये जा चुके हैं तो भी अगर इन जवाबोंसे कुछ मदद मिल जाती हो, तो एकही लेखमें सब सवालोंके जवाब देना फायदेमन्द होगा।

स० १—क्या किसी मौजूदा हुकूमतके लिये, जो लाजिमी तौरपर अहिंसाके बल चलती है, यह मुमकिन है कि यह उपद्रव (बलवा) करनेवालोंकी अन्दरूनी और बाहरी ताकतोंको रोकनेके लिये अहिंसात्मक लड़ाई लड़ सके? या जो लोग अहिंसात्मक ढंगसे उपद्रवोंको रोकना चाहते हैं, क्या उनके लिये यह जरूरी है कि वे राज्याधिकारको छोड़कर बिलकुल निजी तौर पर विरोधियोंके सामने खड़े हो जायं?

ज०—हिंसाके बलपर चलनेवाली हुकूमतके लिये अन्दरूनी या बाहरी किसी भी तरह तरहके उपद्रवोंको अहिंसात्मक ढंगसे रोकना मुमकिन नहीं है। आदमी ईश्वर और कुबेरकी एक साथ पूजा नहीं कर सकता है। दावा यह है कि राज्य अहिंसाके बलपर चल सकता है, यानी वह दुनियाकी सारी हथियारबन्द ताकतोंके खिलाफ अहिंसात्मक लड़ाई लड़ सकता है। ऐसा राज्य अशोकका था। फिर वैसा राज्य कायम किया जा सकता है। लेकिन अगर यह साबित कर दिया जाय कि अशोकका राज्य अहिंसाके बलपर नहीं चलता था तो भी उससे यह दावा कमजोर नहीं पड़ता। इसके गुण-दोषपर ही इसकी जांच होनी चाहिये।

स० २—क्या आप समझते हैं कि कांग्रेसी सरकार बाहरी और अन्दरूनी उपद्रवोंको बिल्कुल अहिंसात्मक ढंगसे शान्त कर सकेगी?

ज०—बेशक, कांग्रेसी सरकारके लिये यह मुमकिन है कि वह बाहरी हमलों और अन्दरूनी बलवोंको अहिंसात्मक ढंगसे शान्त कर सके। मुमकिन है कि कांग्रेसको अहिंसामें इतना एतकाद न हो जितना मुझे है। अगर कांग्रेस अपना रास्ता बदलती है, तो इससे यही साबित होगा कि अबतककी हमारी अहिंसा कमजोरोंकी अहिंसा थी, और यह कि कांग्रेसको इस बातका यकीन नहीं है कि 'स्टेट' भी अहिंसक हो सकती है।

स० ३—क्या यह जान लेनेसे कि मुखालिफ अहिंसावादी है, झगड़ा करनेवालोंकी हिम्मत बढ़ नहीं जाती?

ज०—झगड़ा करनेवालोंको फायदा तभी होता है, जब कि उनका मुकाबिला कमजोरकी अहिंसासे हो। बहादुरकी अहिंसा तो किसी भी हालतमें पूरी तरह हथियारोंसे लैस एक बहादुरसे या समूची फौजसे भी मजबूत होती है।

स० ४—अगर हिन्दुस्तानके लोगोंका एक दल अपने स्वार्थके लिये—जो न सिर्फ दूसरोंके खिलाफ है, बल्कि बुनियादी तौरपर अन्यायपूर्ण भी है—तलवारसे काम ले, तो आपकी नीति क्या कहेगी? एक गैर-सरकारी संस्थाके लिये तो ऐसे मौकोंपर सत्याग्रह करना मुमकिन है, मगर क्या ऐसी हालतमें हुकूमत करनेवालोंके लिये भी सत्याग्रह करना मुमकिन है।

ज०—सवालमें ऐसी मिसाल ली गयी जो कभी पेश आ नहीं सकती। अहिंसात्मक राज्य ज्यादासे ज्यादा समझदार जनताकी मरजीके मुताबिक चलनेवाला और उसके मनकी बात समझकर उस तरह काम करनेवाला होना चाहिये। ऐसे राज्यमें जिस दलकी कल्पना की गयी है वह नहींके बराबर ही होगा। वह उस बड़े बहुमतकी निश्चित मरजीके खिलाफ, जिसकी कि राज्य नुमाइन्दगी करता है, खड़ा ही नहीं हो सकता। आजकी सरकार जनतासे बाहरकी चीज नहीं है। वह बहुत बड़े बहुमतकी इच्छा ही है। अगर उसे अहिंसात्मक ढंगसे जाहिर करें तो वह एकका नहीं, बल्कि एकके खिलाफ निन्यानबेका बहुमत होगा।

स० ५—क्या ज्यादा मजबूत फौजी ताकतवालेका सत्याग्रह कमजोर फौजी ताकतवालेसे ज्यादा कारगर नहीं है?

ज०—ये दोनों विरोधी बातें हैं। जिसके पास मजबूत फौजी ताकत है वह सत्याग्रह कर ही नहीं सकता। मसलन अगर रूस अहिंसासे काम लेना चाहे, तो पहले उसे अपनी सारी हिंसक ताकतको छोड़ देना होगा। इसमें सच्चाई यह है कि जो एकबार फौजी ताकतोंमें बड़े-चढ़े थे वे अपने विचार बदल दें, तो न सिर्फ दुनियाको, बल्कि अपने विरोधियोंको भी वे अपनी अहिंसा दिखा सकते हैं। जो लोग पक्के अहिंसक हैं, वे इस बातकी परवाह नहीं करेंगे कि उनके मुखालिफ मजबूत फौजी ताकतवाले हैं या कमजोर हैं।

स० ६—एक अहिंसक सेनाके लिये किस तरहके अनुशासन और ट्रेनिंगकी जरूरत है? क्या कुछ बातोंमें उसकी ट्रेनिंग मौजूदा फौजी ट्रेनिंगसे मिलती-जुलती न होगी?

ज०—मौजूदा फौजी ट्रेनिंगके शुरूका कुछ बहुत थोड़ा हिस्सा अहिंसक सेनाकी ट्रेनिंगमें शामिल हो सकता है। जैसे अनुशासन, कवायद, कोरस, झण्डा, सिग्नलिंग और इसी तरहकी दूसरी चीजें। ये सब भी बिलकुल फौजी ढंगसे नहीं सिखाये जायेंगे, क्योंकि इनकी बुनियाद ही दूसरी है। एक अहिंसक सेनाके लिये जिस तालीमकी ठीक ठीक जरूरत है, वह है ईश्वरमें अटल विश्वास, अहिंसक सेनाके सेनापतिके हुक्मका अपनी मरजीसे पूरा पालन और सेनाके हिस्सोंमें बाहरी और अन्दरूनी दोनों तरहका पूरा-पूरा सहयोग।

स० ७—क्या आजकी हालतमें यह अच्छा नहीं होगा कि हिन्दुस्तान और इंगलैंड जैसे मुल्क किसी भी फौजी कदमको उठानेसे पहले सत्याग्रहकी आजमाइशको पूरा मौका देनेका इरादा रखते हुए भी—अपनी फौजी काबलियतको पूरा बनाये रखें?

ज०——ऊपर दिये हुए जवाबोंसे यह साफ हो जाना चाहिये कि जबतक हिन्दुस्तान और इंगलैंड अपनी पूरी फौजी काबलियतको कायम रखते हैं, वे किसी भी हालतमें सत्याग्रहके साथ न्याय नहीं कर सकते। साथ ही, यह बिलकुल सही है कि फौजी ताकतें अपने आपसके झगड़ोंको शान्तिके साथ मिटानेके लिये बराबर समझौतेकी बात चलाती रहती हैं। लेकिन यहां हम लड़ाईकी शरण लेनेके पहले होनेवाली शान्तिकी इब्तदाई बातचीतकी चर्चा नहीं कर रहे हैं। हम तो यह सोच रहे हैं कि लड़ाईके नामसे पहचाने जानेवाले हथियारबन्द झगड़ेकी जगह, जिसे खुले लफ्जोंमें कत्लेआम कहा जा सकता है आखिर किस चीजको दी जाय।

हरिजन-सेवक
१२ मई, १९४६



हिंसा कैसे रोकें

स०——कुछ दिन पहले मैं पूनामें एक अंग्रेज मिलिटरी अफसरसे मिला था। वह विलायत जा रहे थे। उन्होंने मुझसे कहा कि अब हिन्दुस्तानमें हिंसा बढ़ रही है और आगे और भी बढ़ेगी। लोग अहिंसाके रास्तेको छोड़ते जा रहे हैं। उन्होंने यह भी कहा: "हम लोग हिंसामें विश्वास करते हैं। हिंसासे हमारा जीवन बंधा पड़ा है। कई गुलाम देशोंने हिंसाके जरिये अपनी आजादी हासिल की है। और आज वे सुखसे दिन बिता रहे हैं। हमने हिंसाको रोकनेके लिये अणु-गोला भी निकाला। दुनिया जानती है कि किस तरह थोड़े वक्तके अन्दर ही हमने खूंखार लड़ाईको अणु-गोलेकी मददसे बन्द कर दिया।"

साहब बहादुर और कहने लगे: "हिन्दुस्तानमें महात्मा गांधीने लोगोंको अहिंसाका रास्ता बताया है। क्या गांधीजीने अणु-गोले जैसी कोई चीज निकाली है, जिसका इस्तेमाल करनेसे लोग फौरन अहिंसाके रास्ते आ जायें और देशमें शान्तिका राज्य कायम हो जाय? क्या अब गांधीजीका अणुगोला देशको हिंसाके रास्ते जानेसे रोक नहीं सकता?"

फिर वह मुझसे बोले: "आप अपने गांधीजीसे क्यों नहीं कहते कि वे इस वक्त देशपर अपनी शक्ति छोड़ दें, जिससे लोग हिंसाके रास्तेको त्याग दें और फिरसे सब मिलकर अहिंसा अख्तियार कर लें। मैं तो कहता हूं कि अगर गांधीजी इस भीषण हिंसाको, जो आज सारे हिन्दुस्तानमें फैल रही है, अभीसे नहीं रोकेंगे, तो बादमें उनको बहुत ही दुःखी होना पड़ेगा और उनका इतने दिनोंका काम बरबाद हो जायगा।"

आशा है, आप कृपाकर इन अंग्रेज अफसरकी शंकाका जवाब देंगे।

ज०—इस सवालमें काफी विचारदोष पाता हूँ। अणु-गोलेने हिंसाको नहीं रोका है। लोगोंके मनमें तो हिंसा भरी ही है। और तीसरी लड़ाईकी तैयारियाँ होती दिखायी पड़ती हैं। यह कहना फिजूल है कि हिंसासे किसीको सुख-चैन मिला है। फिर भी यह कोई नहीं कहता कि हिंसासे कुछ हो ही नहीं सकता।

मैं हिंसाको रोक न सकूं तो मुझे पछताना पड़ेगा ऐसी कोई बात अहिंसामें हो ही नहीं सकती। कोई भी आदमी हिंसाको रोक नहीं सकता। ईश्वर ही हिंसाको रोक सकता है। मनुष्यको तो वह निमित्तमात्र बनाता है। हिंसा किसी बाहरी प्रयोगसे रोकी नहीं जा सकती। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि कोई बाहरी प्रयोग हो ही नहीं सकता या होता नहीं। बाहरी उपायोंके होते हुए भी वह रुकी तो वह ईश्वरकी कृपासे रुकेगी। हाँ, इतना तो कहूँगा कि ईश्वरकी कृपा रूढ़ प्रयोग है। ईश्वर अपने कानूनके मुताबिक ही चलता है। इसलिए हिंसा उस कानूनके मुताबिक ही रुकेगी। हम ईश्वरके सब कानूनोंको जानते नहीं हैं, न कभी पूरे-पूरे जानेंगे। इसलिये जो प्रयत्न हमसे बन सके, हम करते रहें। इतना और भी कह दूं कि मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तानमें अहिंसाका प्रयोग काफी हद तक सफल हुआ है। मैं मानता हूँ कि सवालमें जो निराशा जाहिर की गयी है उसकी कोई गुंजाइश नहीं है। आखिर अहिंसा जगतका एक महान् सिद्धान्त है। उसे कोई मिटा नहीं सकता। मेरे जैसे हजारोंके उसपर अमल करते-करते मर जानेसे भी वह सिद्धान्त मिट नहीं सकता। मर कर ही अहिंसाका प्रचार बढ़ेगा।

हरिजन-सेवक
१९ मई, १९४६

धर्म और अधर्मका विवेक

एक भाई लिखते हैं :—

"५ मईके 'हरिजन-बन्धु'में आपने लिखा है कि आपकी अहिंसामें भयानक प्राणियोंको मसलन शेर, भेड़िया, साँप, बिच्छू वगैरहको मार डालनेकी गुंजाइश है।

"आप कुत्तों वगैरहको खाना नहीं देते। गुजराती समाजके अलावाऔर भी बहुतसे लोग हैं, जो जानवरोंको खिलाना पुण्य समझते हैं,। आजकल जब कि खुराककी इतनी तंगी है, ऐसा खयाल नामुनासिब हो सकता है। मगर इतनी बात तो है कि ये जानवर (कुत्ते वगैरह) आदमीकी काफी सेवा करते हैं। इन्हें खिलाकर इनसे काम लिया जा सकता है।

"आपने बचपनसे स्व० श्री रायचन्द्र भाईसे २७ सवाल पूछे थे। उनमें एक सवाल यह भी था कि जब साँप काटने आये, तो क्या किया जाय? उन्होंने जवाब दिया था कि

आत्मार्थी साँपको नहीं मारेगा। साँप काटे तो उसे काटने देगा। मगर अबकी तो आप दूसरी बात कह रहे हैं। ऐसा क्यों?"

इस बारेमें मैं काफी लिख चुका हूँ। उन दिनों सवाल पागल कुत्तोंके मारनेका था। काफी चर्चा हुई थी। मगर मालूम होता है कि वह सब चर्चा भूल गयी है।

मैं जिस अहिंसाका पुजारी हूँ, वह निरी जीव-दया ही नहीं है। जैन-धर्ममें जीव-दया पर खूब जोर दिया गया है। वह समझमें आता है, मगर उसका यह मतलब हरगिज नहीं है कि इन्सानको छोड़कर हैवानोंपर दया की जाय। मैं मानता हूँ कि जहाँपर जानवरोंपर दया करनेकी बात लिखी है, वहाँ मनुष्यपर दया करनेकी बात तो मान ही ली गयी है। ऐसा करनेमें हद छूट गयी है। और अमलमें तो जीव-दयाने टेढ़ा रूप ही लिया है। जीव-दयाके नाम पर अनर्थ हो रहा है। बहुतसे लोग चींटियोंको आटा डालकर संतोष मानते हैं, मानों आजकलकी जीव-दयामें जान ही नहीं रही। धर्मके नामपर अधर्म चल रहा है। पाखण्ड फैल रहा है।

अहिंसा सबसे ऊँचा धर्म है। वह बहादुरोंका धर्म है, कायरोंका कभी नहीं। दूसरे मारें, हिंसा करें, और हम उससे फायदा उठावें और मानें कि हमने धर्मका पालन किया है, तो यह अपने आपको धोखा देना नहीं हुआ तो और क्या हुआ?

जिस गाँवमें रोज बाघ आता है, वहाँ नामका अहिंसावादी नहीं रहेगा। वह तो वहाँसे भाग जायगा और जब कोई दूसरा आदमी उस बाघको मार डालेगा, तब वापस आकर अपने घर-बारपर कब्जा करेगा। । यह अहिंसा नहीं है। यह तो डरपोककी अहिंसा है। बाघको मारनेवालेने कुछ बहादुरी तो दिखायी। मगर जो दूसरेकी हिंसासे लाभ उठाता है वह कायर है। वह कभी अहिंसाको पहचान नहीं सकता।

देहधारीको कुछ न कुछ हिंसा तो करनी ही पड़ती है? असल धर्म एक होते हुए भी उसके बारेमें हर एककी समझ अलग-अलग होती है। इसलिये सब अपनी शक्ति और समझके मुताबिक चलते हैं। एकका धर्म दूसरेके लिये अधर्म हो सकता है। माँस खाना मेरे लिये अधर्म है, मगर जो माँसपर ही पला है, जिसने माँस खानेमें कोई बुराई नहीं मानी, वह मुझे देखकर माँस छोड़ दे, तो उसके लिये वह अधर्म होगा।

मुझे खेती करनी हो, जंगलमें रहना हो, तो खेतीके लिये लाजिमी (अनिवार्य) हिंसा मुझको करनी ही पड़ेगी। बन्दरों, परिन्दों और ऐसे जन्तुओंको, जो फसल खा जाते हैं, खुद मारना होगा या कोई ऐसा आदमी रखना होगा जो उन्हें मारे। दोनों एक ही चीज है। जब अकाल सामने हो, तब अहिंसाके नामपर फसलको उजड़ने देना मैं तो पाप ही समझता हूँ। पाप और पुण्य स्वतन्त्र चीजें हैं। एक ही चीज एक समय पाप और दूसरे समय पुण्य हो सकती है।

आदमीको शास्त्र-रूपी कुएँमें डूब नहीं जाना है बल्कि गोताखोर बनकर शास्त्ररूपी समुद्रमेंसे मोती निकालना है।

इसलिये कदम-कदमपर आदमीको हिंसा और अहिंसाका विवेक करना होता है। इसमें न शर्मकी गुंजाइश है न डरकी।

हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जोने।
(हरिका रास्ता बहादुरोंका है, डरपोकोंका उसमें कोई काम नहीं।)

आखिर श्री रायचन्द्र भाईने तो यही लिखा था कि अगर मुझमें शक्ति हो और मैं आत्माको पहचानना चाहता होऊँ, तो सांपके काटने आनेपर मुझे चाहिये कि मैं उसे काटने दूं। मैंने तो उसका खून मिलनेसे पहले या बादमें आज तक सांपको कभी मारा ही नहीं। इसे मैं अपनी बहादुरी नहीं समझता। मेरा आदर्श तो यह है कि मैं साँप और बिच्छूसे बेधड़क खेल सकूं। मगर आज तो मेरा यह एक मनोरथ ही है। मैं नहीं जानता कि यह मनोरथ कभी फलेगा या नहीं, और अगर फले तो कब? मैंने अपने आदमियोंको सब जगह साँप और बिच्छू मारने दिये हैं। मैं चाहता तो उन्हें रोक सकता था। मगर रोकता कैसे? इन जानवरोंको अपने हाथमें पकड़कर दूसरोंको निडर बनानेकी हिम्मत मुझमें नहीं थी। न होनेकी मुझे शर्म थी। मगर वह मेरे या उनके किस काम की? राम-नामकी कृपा होगी, तो मुझे आशा करनी चाहिये कि किसी रोज ऐसा करनेकी भी हिम्मत आ जायगी। मगर तब तक मैं तो ऊपर बताया हुआ धर्म ही जानता हूँ। धर्म भी तजरबेसे सीखा जाता है, कोरी पंडिताईसे नहीं।

हरिजन-सेवक
९ जून, १९४६



एटम-बम और अहिंसा

कुछ अमेरिकन दोस्त कहते हैं कि एटम बमसे ही अहिंसा निकलेगी। शायद वे यह कहना चाहते हैं कि जिस तरह ठूंस-ठूंस कर मिठाइयाँ खानेसे आदमीका मन मिठाईसे ऊब जाता है, उसे मतली होने लगती है, उसी तरह एटम बमकी तबाहीको देखकर दुनियाके दिलमें हिंसाके लिये नफरत पैदा हो जायगी। मगर वह थोड़े दिनोंके लिये होगी। जैसे ऊब मिटते ही आदमी फिर मिठाइयाँ खाने बैठ जाता है, उसी तरह एटम बमकी बात-के नजारेका असर दूर होते ही दुनियाँ दूनी रफ्तारसे हिंसाकी तरफ दौड़ेगी?

कई बार बुराईमेंसे भलाई निकलती है। मगर वह खुदाकी हिकमत है, इन्सानकी नहीं। इन्सानके हाथों तो हम यही देखते हैं कि भलाईका नतीजा भला और बुराईका नतीजा बुरा होता है। बेशक यह संभव है कि एटामिक ताकत (अणुशक्ति) का—जिसे अमेरिकन वैज्ञानिकोंने और फौजियोंने तबाहीके लिये इस्तेमाल किया है—इस्तेमाल

भलाईके लिये भी हो सकते हैं। मगर अमेरिकन दोस्तोंके कहनेका मतलब यह नहीं था। वे ऐसे भोले-भाले न थे कि कोई ऐसा सवाल पूछते जिसका एक ही जवाब हो सकता है। आग लगानेवाला तबाही और नुकसानके लिये आगका इस्तेमाल करता है, जब कि गृहिणी उसी आगका इस्तेमाल इन्सानको कूवत देनेवाला खाना पकानेमें करती है। जहाँ तक मैं देख सकता हूँ एटम बमने इन्सानकी ऊँची से ऊँची भावनायें, जो उसे युगोंसे कायम रखती चली आ रही है, खतम कर डाली हैं। पुराने जमानेमें लड़ाईके कुछ ऐसे कानून जरूर होते थे जो उसे कुछ बरदाश्त करने लायक बनाते थे। अब हम उनका असल रूप देख रहे हैं। आज जोर-जबरदस्तीको छोड़कर लड़ाईका दूसरा कोई कानून ही नहीं है। एटम बमने मित्र राज्योंको एक खोखली जीत तो दी, पर साथ ही उसने थोड़े वक्तके लिये जापानकी आत्माका खून कर दिया है। लेकिन बरबाद करनेवाले राष्ट्रकी आत्माका क्या हुआ, यह कहना आज कठिन है। कुदरत किस तरह अपना काम करती है, यह समझना बड़ा मुश्किल है। इस रहस्य (राज)का पता तो हम इस किस्मकी दूसरी चीजोंके तजरबेसे ही लगा सकते हैं। अपनेको या अपने नुमाइन्देको गुलामीके पींजरेमें रखे बिना कोई आदमी किसीको गुलाम नहीं रख सकता। इससे कोई यह न समझे कि जापानने अपने निन्दनीय सपनोंको पूरा करनेके लिये जो बुरे काम किये, उनका मैं बचाव करना चाहता हूँ; दोनों पक्षोंमें फरक तो सिर्फ दरजेका ही था। मैं मान लेता हूँ कि जापानकी लालच ज्यादा बुरी थी। मगर इससे जिनकी लालच कम बुरी थी, उन्हें यह हक हासिल नहीं हो जाता कि वे राक्षस बनकर जापानके एक इलाकेमें समूचे मर्द, औरतों और बच्चोंका नाश कर डाले।

एटम बमकी इस बेहद दर्दनाक कहानीसे हमें सबक तो यह सीखना है कि जिस तरह हिंसासे हिंसाको नहीं मिटाया जा सकता, उसी तरहसे एक बमको दूसरे बमसे नहीं मिटाया जा सकता। इन्सान सिर्फ अहिंसाकी मार्फत ही हिंसाके गड्ढेमेंसे निकल सकता है। नफरतको सिर्फ प्यारसे ही जीता जा सकता है। नफरतके सामने नफरत दिखानेसे वह और भी फैलती और गहरी होती है। मैं जानता हूँ कि जो बात मैं कई बार कह चुका हूँ और जिसपर अमल करनेकी मैंने भरसक कोशिश भी की है, उसीको मैं आज दुहरा रहा हूँ। असलमें तो पहले भी मैंने कोई नयी बात नहीं कही थी। मैंने जो कहा था, यह तो सनातन सत्य (कदीमी सचाई) है। हाँ, इतनी बात जरूर है कि मैंने, कोई किताबी बात नहीं कही थी। मैं यह मानता हूँ कि जो चीज मेरी रग-रगमें भरी है उसीको मैंने जोरदार शब्दोंमें कहा है। साठ साल तक इस चीजको जीवनके हर एक क्षेत्रमें आजमाकर मेरी श्रद्धा और भी पक्की हुई है, और दोस्तोंके तजरबेसे भी उसे ताकत मिली है। यह एक ऐसी जड़की सच्चाई है कि आदमी अगर अकेला हो तो भी बगैर किसी झिझकके इसपर डटकर खड़ा रह सकता है। मैक्समूलरने बरसों पहले कहा था: "जबतक सत्यपर विश्वास रखनेवाले मौजूद हैं, सत्यको दुहराना ही पड़ेगा।" मैं इस बातको मानता हूँ।

हरिजन-सेवक

७ जुलाई, १९४६

खामख्वाह क्यों मारें ?

अलीगढ़से यह सूचना आयी है :

"९ जूनके 'हरिजन-सेवक'के चौथे पृष्ठपर आप लिखते हैं कि 'बन्दरों, परिन्दों, और ऐसे जन्तुओंको, जो फसल खा जाते हैं, खुद मारना होगा, या कोई ऐसा आदमी रखना होगा, जो उन्हें मारे।' इस संबंधमें मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि अगर फसलको खा जानेवाले जानवरोंको मारे बगैर ही फसलकी रक्षा आसानीसे हो सकती हो, तो उन्हें मारना जरूरी नहीं होना चाहिये। मिसालके लिये मैं आपको सूचना देता हूं कि मेरे चाचाने रातको बैटरीकी रोशनी बन्दरोंकी ओर फेंक फेंककर उन्हें अपने खेत छोड़नेके लिये मजबूर कर दिया। इस तरह बन्दरोंको मारनेके बजाय बैटरीके प्रयोगसे भगानेका मार्ग (रास्ता) आप क्यों न स्वीकार करें और पेश करें ?"

यह सूचना पहले विचारसे तो अच्छी लगती है। लेकिन दूर तक विचार करनेसे लगता है कि बैटरीसे काम नहीं चल सकेगा। उससे मेरे खेतकी कुछ रक्षा हो सकेगी, मगर दर्द-गिर्दकी नहीं। स्वार्थी बनकर दूसरोंका नुकसान करना मेरे लिये तो ठीक नहीं होगा। वह भी हिंसा होगी। हिंसाके नामपर ऐसी हिंसा करनेमें हम झिझकते नहीं, जैसे कि हम अपने आँगनसे दूसरेके आँगनमें साँप फेंकते हैं, कचरा डालते हैं। शुद्ध अहिंसा बताती है कि अगर बन्दर वगैरहसे बचना आवश्यक है, तो उनको मार डालना आवश्यक हो जाता है। सामान्य नियम तो यही है कि जितनी हिंसासे हम बच सकें, उतनीसे बचना हमारा धर्म है। सामाजिक अहिंसा ही समाजके लिये हो सकती है। व्यक्तिको जहां तक वह जा सकता है, जाना होगा। हर समय, हर कदमपर, ध्यानसे विचार करना परम कर्तव्य है। बगैर विचारे रूढ़ि धर्मपर चलनेसे हमारी गति रुक जाती है।

हरिजन-सेवक
७ जुलाई, १९४६



सवाल-जवाब

स०—कांग्रेस स्वराज्य हासिल करनेके लिये ब्रिटिश हुकूमतके खिलाफ अहिंसासे लड़े और हुकूमत पाये हुए कांग्रेसी मंत्रिमंडल गलत रास्ते चलकर तूफान मचानेवाले भाइयोंको गोलियोंसे भूनकर शान्ति (अमन) कायम करनेकी कोशिश करें, क्या ये दोनों बातें मेल खाती हैं? धारा सभाके मंत्री और मेम्बर अपने भाइयोंके साथ कुरबान होनेके लिये अहिंसासे काम न लेना चाहते हों, तो आपके रविशंकर महाराज और साने गुरूजी जैसे इने-गिने लोगोंको छोड़कर दूसरे लोगों और हुकूमत पाये हुए सारे कांग्रेसियोंको ब्रिटिश सल्तनतके खिलाफ बरती जानेवाली अहिंसा कायरों या डरपोकोंकी अहिंसा नहीं कही जायगी?

ज०—आपका उठाया हुआ हिंसा और अहिंसाका सवाल तो बहुत पुराना हो गया है। इस बारेमें बहुत कुछ कहा जा चुका है। अगर दूसरोंकी तरह आपके दिलमें भी अहिंसा अभीतक न पैठी हो, तो आप उसे फेंक दीजिये। इसमें मैं किसी तरहका दोष नहीं देखता। और दूसरे इसमें दोष देखते हैं, इसीलिये आप भी देखें, ऐसा कोई कायदा नहीं। इसके बरखिलाफ कायदा तो यह है कि ऋषियोंने जिस बातको माना हो, सन्तोंने जिसे बरता हो, उसे हमारा दिल कबूल करे, तो ही हम उस बातको मानें और वैसा बरताव करें। यहाँ सवाल यह खड़ा होता है कि अगर ऋषियोंने गलत कायदा माना हो, और सन्तोंने उसे बरता हो, लेकिन हमारा दिल और किसी बातको ही मानता हो, तो हम उसके मुताबिक बरताव करें या नहीं। इसका जवाब इतना ही हो सकता है कि हर एक इन्सान खुद जोखिम उठाकर उसे बरत सकता है। सुधार या नयी खोज इसी तरह होती है। हम यह जानते हैं कि हमारे शंकराचार्य छुआछूतका समर्थन (ताईद) करते हैं। फिर भी हम तो इसे दिल और दिमागका कलंकरूप (कालिख) ही मानते हैं। भले ही दूसरे इसमें, हमारी इस धारणा और बरतावमें, नुक्स देखते हों।

हरिजन-सेवक
४ अगस्त, १९४६



हड़तालें

अखबारोंमें खबर छपी थी कि डाकवालोंकी मौजूदा हड़तालको मैंने आशीर्वाद दिये हैं, मगर यह सच नहीं है। असल बात यह है कि एक रोज कनू गांधी एक डाकियेको मेरे पास नमस्कार करनेके लिये ले आये। उन दिनों हड़ताल शुरू हुई थी। डाकियेने मेरे आशीर्वाद माँगे। मैंने उनसे कहा कि अगर उनकी हड़ताल वाजिब है, वे सब बिलकुल अहिंसक रहे, तो उन्हें जरूर ही कामयाबी मिलेगी। इसका यह मतलब नहीं कि मैंने इस हड़तालको आशीर्वाद दिया था। मगर मैंने क्या कहा था, और डाक-वालोंकी हड़ताल जायज थी या नाजायज, इस बहसको अभी छोड़ दें। चूंकि मैं अपने आपको अहिंसक हड़ताल चलानेमें माहिर समझता हूँ, इसलिये मेरा धर्म है कि इस हड़तालके और सब दूसरी हड़तालोंके चलानेवालोंको और आम जनताको भी अहिंसक हड़तालकी शर्तें समझा दूं।

जाहिर है कि बिना वजनदार वजूहातके हड़ताल होनी ही न चाहिये। नाजायज हड़तालको न तो कामयाबी हासिल होनी चाहिये और न किसी हालतमें उसे आम-रिआयाकी हमदर्दी मिलनी चाहिये।

आमतौर पर लोगोंको मालूम ही नहीं हो सकता कि हड़ताल जायज है या नाजायज सिवाय इसके कि हड़तालकी ताईद कोई ऐसे लोग करें, जो गैर जानिबदार यानी निष्पक्ष हों और जिनपर आमलोगोंका पूरा विश्वास हो। हड़ताली खुद अपने मामलेमें राय देनेके हकदार नहीं। इसलिये या तो मामला ऐसे पंचके हाथमें सिपुर्द करना चाहिये, जो दोनों तरफके लोगोंको मंजूर हों, या उसे अदालती फैसलेपर छोड़ना चाहिये। जब इस तरीकेसे काम किया जाता है, तो आमतौरपर पब्लिकके सामने हड़तालका मामला पेश करनेकी नौबत ही नहीं आती। अलबत्ता कभी-कभी यह जरूर होता है कि मगरूर मालिक पंचके या अदालतके फैसलेको ठुकरा देते हैं, या गुमराह मजदूर अपनी ताकतके बल मालिकसे जबरदस्ती और भी रियायतें पानेके लिये फैसलेको मंजूर करनेसे इनकार करते हैं। ऐसी हालतमें मामला आम रिआयाके सामने आता है। जो हड़ताल माली हालतकी बेहतरीके लिये की जाती है, उसमें सियासी या राजनीतिक मकसदकी मिलावट नहीं होनी चाहिये। ऐसा करनेसे सियासी तरक्की कभी नहीं हो सकती। बल्कि होता यह है कि अकसर हड़तालियोंको ही इसका नतीजा भोगना पड़ता है। चाहे उनकी हड़तालका असर आम लोगोंकी जिन्दगी पर पड़े या न पड़े। सरकारके सामने कुछ दिक्कतें जरूर खड़ी हो सकती हैं, लेकिन इसकी वजहसे उसकी हुकूमतका काम रुक नहीं सकता। अमीर लोग रुपया खर्च करके अपनी डाकका बन्दोबस्त खुद कर लेंगे, लेकिन असल मुसीबत तो गरीबोंको झेलनी पड़ती है, जिनकी पीढ़ीसे चली आयी एक अहम सहूलियत बन्द हो जाती है। ऐसी हड़तालें तो तभी करनी चाहियें,

जब इन्साफ करानेके सब जरिये नाकाम साबित हो चुके हों। आज तो सब सूबोंमें लोगोंकी अपनी सरकारें काम कर रही है। हड़ताल करनेसे पहले डाकवालोंका यह धर्म था कि वे उनके साथ मशवरा करते। जहाँतक मैं जानता हूँ कि सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री बालासाहब खेर और श्री मंगलदास पकवासा इस मामलेके बीचमें पड़े हैं। अगर डाकवालोंने उनकी सलाहको ठुकरा दिया है, तो कहना होगा कि उन्होंने यह खतरनाक कदम उठाया है। अगर ये सब ताकतवर यूनियनें अपनी निजकी हुकूमतका और कांग्रेसकी वर्किंग कमेटीके मेम्बरोंका कहना न सुनेंगी, तो इसके मानी होंगे कि वे कांग्रेसको भी नहीं मानतीं। उन्हें ऐसा करनेका हक तभी हो सकता है, जब कांग्रेस उनके स्वार्थको बेचने लगे।

हमदर्दी दिखानेके लिये भी दूसरोंको उस वक्त तक हड़ताल नहीं करनी चाहिए जबतक यह साबित न हो जाय कि हड़तालियोंने सभी कानूनी और जायज जरियोंको आजमा लिया है और उसमें वे नाकाम रहे हैं, या यह साबित न हो जाय कि कांग्रेसने उन्हें धोखा दिया है, या उनके हितकी खबरदारी नहीं रखी है, या खुद कांग्रेसने संगठित और जिद्दी मालिकोंसे इन्साफ पानेके लिये हमदर्दीसे हड़ताल करनेकी आवाज न उठाई हो।

आज तो हुकूमतको बेकार बनानेके लिये सारे मुल्कमें हड़तालें करानेकी बात सुनी जाती है। हड़तालके जरिये हुकूमतको बेकार बनानेका यह कदम एक आखिरी सियासी कदम है और यह कदम उठानेका हक सिर्फ कांग्रेसको ही होना चाहिये, दूसरी किन्हीं यूनियनोंको नहीं, फिर वे कितनी ही ताकतवर क्यों न हों। अगर आजादी हासिल करनेके लिये कांग्रेस ही आम लोगोंकी सबसे बड़ी और अहम संस्था है, तो हुकूमतको बेकार बनानेका काम भी उसीके हाथ रहना चाहिये। फिलहाल कांग्रेस तजवीजशुदा विधान-सभाको कामयाब बनानेकी कोशिशमें लगी हुई है। उसके इस काममें बेहद मुश्किलें पेश आनेवाली हैं। ऐसी हड़तालोंसे सिर्फ उसके रास्तेमें बहुत ज्यादा रुकावटें पैदा हो सकती हैं।

ऊपरकी इन बातोंसे जाहिर है कि एक सियासी हड़तालकी अपनी अलग जगह है और उसको माली हड़तालोंके साथ न तो मिलाना चाहिये और न उनका आपसमें वैसा कोई रिश्ता रखना चाहिये। अहिंसक लड़ाईमें सियासी हड़तालकी अपनी एक खास जगह होती है। ऐसी हड़ताल गहरे सोच-विचारके बाद ही की जाती है— जब-तब और ज्यों-त्यों नहीं। ऐसी हड़तालें बिलकुल खुली होनी चाहिये और उनमें गुण्डाशाहीकी कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिये। इसलिये सब तरहके हड़तालियोंको मैं नरमीके साथ यह सुझाना चाहता हूँ कि वे पंचके या अदालतके फैसलेको मंजूर करनेका साफ साफ एलान करें और कांग्रेसकी रहनुमाई हासिल करके उसकी सलाहपर चलें। और, जो लोग हमदर्दी दिखानेके लिये हड़ताल करते हैं, उनसे मैं कहूँगा कि वे तबतक अपनी हड़ताल बन्द रखें जबतक कांग्रेस तजवीजशुदा विधान-सभाके कामको सफल बनानेकी कोशिशमें लगी है, और सूबोंकी सरकारें आम लोगोंके नुमाइन्दोंके हाथमें हैं।

हरिजन-सेवक
११ अगस्त, १९४६

असल बात चूक गये

नीचे लिखे हुए सवाल एक अंग्रेज मिलिटरी अफसरने भेजे हैं। उन्होंने २८ जुलाई, १९४६के 'हरिजन' में मेरा आजादीपर लेख बड़ी दिलचस्पीसे पढ़ा है। यह अफसर एक फौजी इंजीनियर है। अमेरिका और यूरोपमें खूब घूमे हैं और अपनी आँखोंसे जर्मनीमें लड़ाईकी तबाही और बरबादी देख चुके हैं।

स०—उस आदर्श हुकूमतमें (और बेशक यह हुकूमत आदर्श होगी) आदमी बाहरी हमलोंसे किस तरह बच सकता है? आजकल जब कि मशीनका दौर-दौरा है, अगर हुकूमतके पास नये से नये हथियारोंसे लैस फौज न होगी, तो ऐसे हथियारोंवाली एक फौज हमला करके मुल्कको जीत सकती है और वहाँके रहनेवालोंको अपना गुलाम बना सकती है।

सवाल पूछनेवाले भाई कहते हैं कि उन्होंने मेरे लेखको बड़े ध्यानसे बार-बार पढ़ा है और फौजी आदमी होनेके बावजूद उसे पसन्द भी किया है। मगर साफ पता चलता है कि मेरे लेखमें जो असल बात है, उसे वे चूक गये हैं। वह यह है कि एक व्यक्तिकी तरह एक कौम चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, और कौम तो क्या, एक जमात भी हथियारोंसे लैस सारी दुनियाके खिलाफ अपनी इज्जतकी हिफाजत कर सकती है। लेकिन शर्त यह है कि उसमें सब एक मतके हों और उनमें इस हिफाजतके लिये पक्का इरादा हो। यही लोगोंकी शक्तिकी खूबसूरती है जिसकी मिसाल नहीं मिल सकती। यही अहिंसक बचाव है, जो किसी मंजिलपर भी न हार जानता है, न हार मानता है। इसलिये जिस कौम या गिरोहने हमेशाके लिये अहिंसाका रास्ता अपना लिया हो, वह अणुगोलेसे भी गुलाम नहीं रखा जा सकता।

हरिजन-सेवक
१८ अगस्त, १९४६

❀

हिंसा क्या कर सकती है?

अगर अखबारोंकी रिपोर्टोंपर भरोसा किया जाय, तो यह मानना पड़ेगा कि सिन्धके जिम्मेदार मन्त्री और करीब-करीब सारे हिन्दुस्तानके उतने ही जिम्मेदार लीगी खुले आम साफ लफ्जोंमें हिंसाका प्रचार कर रहे हैं। धोखेबाजीके बजाय साफ बात कहना अपने आपमें एक खूबी है। लेकिन जब वह बेहयाईकी शकल ले लेती है, तो वह बुराई बन जाती है, जिससे बचना चाहिये, फिर भले वह एक लीगीमें हो या किसीमें। एक कहावत है—'ऐसा हर एक मुसलमान गद्दार है, जो लीगमें शरीक नहीं है।' दूसरा कहता है: 'हिन्दू काफिर है, उसे काफिरकी सजा मिलनी चाहिये।'

मुस्लिम लीगका सीधा कदम क्या है ? और वह कैसे उठाया जायगा उसे कलकत्ताने प्रत्यक्ष कर दिखाया है।

इससे फायदा किसे हुआ ? आम मुसलमानों या अमनपसन्द इस्लामको माननेवालोंको तो सचमुच इससे फायदा नहीं हुआ। इस्लामके मानी ही जब्त (संयम) और अमन है। एक दूसरेको सलाम करते वक्त 'अस्सलाम आलेकुम' कहा जाता है, उसका भी मतलब यही होता है 'खुदा आपको अमन और सलामती बख्शे।'

जिन्दगीमें हिंसा (तशद्दुद)की जगह हो सकती है, लेकिन उस हिंसाकी नहीं, जो हमने कलकत्तामें देखी है। अखबारोंकी रिपोर्टोंको सच मानकर ही यह बात कही जा रही है। बिना सोचे विचारे की जानेवाली हिंसाके जरिये किसी भी ढंगका पाकिस्तान हासिल नहीं किया जा सकता। जब मैं बिना सोचे विचारे की जाने वाली हिंसाकी बात लिखता हूँ तो कुदरती तौरपर यह मान लेता हूँ कि समझ-बूझकर भी हिंसा की जा सकती है, फिर वह किसी भी शक्लमें क्यों न हो। लेकिन कलकत्ताने जो कर दिखाया वह समझ-बूझकर की जानेवाली हिंसाकी मिसाल नहीं है।

बिना सोचे विचारे की जानेवाली हिंसा हमारे मुल्कमें ब्रिटिश या दूसरी विदेशी हुकूमतकी जिन्दगीको बढ़ानेमें मदद करती है। मेरा विश्वास है कि कैबिनेट मिशनने जिस स्टेट पेपरका एलान किया है, उसके बनानेवाले यह चाहते हैं कि हिन्दुस्तानकी हुकूमतकी बागडोर शान्तिसे हिन्दुस्तानके नुमाइन्दोंके हाथ सौंप दी जाय। लेकिन अगर हमें ब्रिटिश संगीनों और मशीनगनोंके इस्तेमालकी जरूरत महसूस होती है, तो अंग्रेज यहाँसे जानेवाले नहीं। और अगर वे चले भी गये, तो उनकी जगह कोई दूसरी विदेशी हुकूमत ले लेगी। अगर हर वक्त, जब-जब ब्रिटिश संगीनोंका इस्तेमाल किया जाता है, हम यही दलील पेश करते रहे कि विरोधी पक्षके भड़कानेवाले जासूस ही जानबूझकर ऐसे दंगे कराते हैं, तो हम भारी खतरा उठायेंगे। बेशक, कभी ऐसा भी होता है। लेकिन हमेशा यह दलील काम नहीं देगी।

पिछले कुछ वक्तसे कलकत्ता काफी बदनाम रहा है। पिछले कुछ महीनोंसे उसने कई खूंखार प्रदर्शन देखे हैं। अगर इस बदनामीको और थोड़े वक्त तक सहारा मिला तो कलकत्ता महलोंका शहर न रह जायगा—वह भूतोंका शहर बन जायगा।

कितना अच्छा हो कि कलकत्तेकी हिंसा बाँझ साबित हो और उसे सारे मुल्कमें फैलानेका संकेत न बनें। बेशक यह मुस्लिम लीगके लीडरोंपर ही मुनहसिर है; फिर भी दूसरे नेता अपनी जिम्मेवारीसे बरी न होंगे। वे बदला ले सकते हैं। लेकिन बदलेसे बचना आसान और सीधी बात है बशर्ते इसकी सच्ची चाह हो। बदला लेना बड़ी पेचीदा चीज है। ईंटका जवाब ईंटसे या ईंटका जवाब पत्थरसे भी दिया जा सकता है।

हरिजन-सेवक
२५ अगस्त, १९४६

जहर का उतार

कलकत्तेमें हाल ही में जो शर्मनाक और अफसोसनाक वारदातें हो गयीं, उनका हूबहू बयान देनेके बाद एक भाई लिखते हैं :—

"ऐसे मौकोंपर हमारा फर्ज क्या होना चाहिये ? ऐसे वक्त कांग्रेस तो आम जनताको कोई साफ हिदायतें नहीं देती। दूर बैठकर अहिंसाकी नसीहत देनेसे कोई फायदा नहीं होता। अगर इस बार कलकत्तेमें अहिंसात्मक विरोध किया जाता, तो उसका नतीजा यह होता कि एक-एक हिन्दू मारा जाता और हिन्दुओंकी तमाम जायदाद बरबाद हो जाती।"

कलकत्तेकी वारदातोंपर कांग्रेसकी वर्किंग कमेटी जिस निश्चयपर पहुँची, जो अखबारोंमें छप चुका है, उसके आखिरी हिस्सेमें कमेटीने साफ लफ्जोंमें राह दिखायी है। कमेटीने कहा है कि "आपसकी मारकाट धमकी हिंसासे बन्द नहीं हो सकती। उसका इलाज तो बाहमी समझौता, दोस्ताना बातचीत, और अगर जरूरत हो तो सालसी (पंच) फैसलेसे ही हो सकता है।" इस साफ, सीधी, और काबिल अमल बातको मानने के लिये अहिंसामें विश्वासकी जरूरत नहीं। बात यह है कि अगर कलकत्तेके तमाम हिन्दू जानबूझ कर हिम्मतके साथ, बिना बदला लिये मर जाते, तो वे न सिर्फ हिन्दू धर्मको बल्कि समूचे हिन्दुस्तानको बचा लेते, और उससे हिन्दुस्तानमें इस्लाम भी शुद्ध या पाक बन जाता।

लेकिन असलमें हुआ क्या ? हमारी आपसकी जंगली मार-काटको बन्द करनेके लिये अंग्रेजी फौजको बीचमें पड़ना पड़ा। उसकी इस दस्तन्दाजीसे न हिन्दुओंको कोई फायदा पहुंचा, न मुसलमानोंको। फर्ज कीजिये कि कलकत्तेका यह जहर सारे देशमें फैल जाय और ब्रिटिश संगीनें और बंदूकें एक दूसरेपर छुरेबाजी करनेसे रोकें, तो इसका मतलब क्या होगा ? यही कि अभी काफी अरसे तक हिन्दुस्तानको ब्रिटेनकी या उसके जैसी सल्तनतकी गुलामी करनी पड़ेगी। और यह गुलामी उस वक्त तक बनी रहेगी, जबतक हिन्दू मुसलमान दोनोंके होश ठिकाने न आ जायं। ऐसा तभी होगा जब तीसरी ताकतके बिना वे आपसमें लड़-भिड़ कर लस्त-पस्त हो जायँगे, और बाहमी समझौता कर लेंगे। या जब दोमेंसे कोई एक दल बड़ीसे बड़ी जोखिम उठाकर भी हिंसा छोड़ अहिंसाको अपना लेगा। आज हालत यह है कि आम रिआयाको आजकलकी लड़ाईके नयेसे नये हथियार चलानेकी न तो कोई तालीम मिली है, और न ऐसे कोई हथियार ही उसके पास हैं। चुनांचे आपसकी मारकाटमें किसीको कोई कामयाबी तो मिल ही नहीं सकती। अहिंसाके लिये किसी तरहकी बाहरी तालीम जरूरी नहीं होती। उसके लिये एक ही चीज की जरूरत है—हमें अपने दिलमें यह तय कर लेना चाहिये कि हम बदला लेनेकी गरजसे किसीको नहीं मारेंगे और बिना बदला लिये हिम्मतके साथ मौतका सामना करेंगे।

अहिंसापर मेरा कोई यह 'सरमन', प्रवचन या उपदेश नहीं बल्कि एक सीधी सादी समझकी बात है। अगर हमें इस कानूनमें अटूट श्रद्धा हो, अक़ीदा, एतक़ाद या विश्वास हो, तो बुरीसे बुरी खिजलाहटकी हालतमें भी हम सब्रसे काम लेंगे, चुपचाप सब सहेंगे। मगर बदला लेनेका ख़याल तक मनमें न लायेंगे। इसे मैंने बहादुरोंकी अहिंसा कहा है।

अफ़सोस इस बातका है कि आजतक किसी बड़े पैमानेपर इस तरहकी बहादुराना अहिंसा हममें पायी नहीं जाती। बाज लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि ऐसी अहिंसाका पालन तो एक छोटा गिरोह भी नहीं कर सकता, फिर करोड़ोंकी तो बात ही क्या? वे कहते हैं कि इस तरहकी अहिंसा तो बिरले लोग ही दिखा सकते हैं। अगर अहिंसा ऐसे कुछ ही लोगोंके लिये महफ़ूज रहे तो कहना होगा कि वह मानवजातिकी इन्सानी दुनियाके किसी कामकी नहीं।

जो कुछ भी क्यों न हो, इतनी बात साफ़ है कि अगर आम तौरपर लोग बहादुरोंकी अहिंसा दिखानेके लिये तैयार नहीं हैं, तो उन्हें अपने बचावके लिये हिंसाके इस्तेमालकी तैयारी रखनी होगी। इस हिंसामें किसी तरहकी जालसाजी या धोखेबाजी न बरती जानी चाहिये। इसमें सिर्फ़ अपने बचावकी बात ही सामने रहनी चाहिये। इसमें किसी तरहकी नामर्दगी या जंगलीपन नहीं होना चाहिये। इसलिये इसमें कोई पोशीदगी या लुकाछिपी न होगी। पीछेसे आकर पीठमें छुरा भोंकने या गिरफ़्तारीसे बचनेके लिये छिपते फिरनेकी इसमें कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। मैं जानता हूँ कि हम लोग निहत्थे हैं और हथियार चलाना नहीं जानते। यह अच्छी बात है या नहीं, इसपर मुख़्तलिफ़ राये हो सकती हैं। लेकिन इससे तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अपने बचावके लिये इन्सानको हथियार चलानेकी तालीम लेना कोई जरूरी नहीं। इसके लिये तो मजबूत हाथों और मजबूत दिलकी ही जरूरत होती है।

जाहिर है कि दूसरेको चोट पहुँचानेमें हिंसा है, लेकिन दिलमें दूसरेको चोट पहुँचानेका ख़याल रखते हुए भी डरपोकपनकी वजहसे अपनी या अपने पड़ोसीकी हिफ़ाजतके लिये तैयार तक न होना तो शायद और भी बुरी हिंसा है।

ऐसी हालतमें नेता लोग क्या करें? नये मंत्री या वज़ीर क्या करें? उन्हें हमेशा कौमी एकता पैदा करनेकी कोशिश करनी चाहिये—किसीसे डरकर नहीं, बल्कि इस ख़यालसे कि वह जरूरी है, बुनियादी चीज है। मैं मुसलमानोंको या गैर-हिन्दुओंको अपना सगा भाई समझता हूँ। यह मैं किसीको खुश करनेके लिये नहीं समझता, बल्कि इसलिये समझता हूँ कि वे भी उसी भारतमाताके—मादरे हिन्दके—बच्चे हैं। चूँकि वे मुझसे नफ़रत करते हैं या मुझे अपना भाई नहीं समझते, इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि वे मेरे भाई नहीं हैं। बावजूद उनकी नाराजगीके मुझे अपनी मुहब्बतसे उन्हें जीतना ही है। नये मंत्रियोंको यह फ़ैसला कर लेना चाहिये कि वे काली या गोरी किसी भी ब्रिटिश फ़ौजकी मदद नहीं लेंगे और न ब्रिटिशोंकी तैयार की हुई पुलिसका ही इस्तेमाल करेंगे।

न फौज, न पुलिस, कोई भी हमारा दुश्मन नहीं। लेकिन अबतक फौज और पुलिसका इस्तेमाल लोगों पर गुलामीका जुआ लादनेमें हुआ है उनकी मदद करनेके लिये नहीं। इसलिये अब तो फौज और पुलिसका इस्तेमाल तामीरी कामोंके लिये किया जाना चाहिये, क्योंकि यह काम उनके बूतेका है। फौजको तो खास तौरपर इसकी तालीम मिली होती है। फौजवाले बातकी बातमें तम्बुओंका शहर खड़ा कर सकते हैं। वे जानते हैं कि पानी किस तरह मुहय्या किया जा सकता है, उसे कैसे साफ रक्खा जा सकता है, और सफाईका किस तरह पूरा पक्का इन्तजाम किया जा सकता है। इसमें शक नहीं कि वे मारना और मारते-मारते मर जाना भी जानते हैं। उनके कामके इस पहलूसे जनता अच्छी तरह वाकिफ है। लेकिन किसी भी हालतमें यह उनका सबसे बड़ा और संगीन काम नहीं। हमें तो उनके रचनात्मक या तामीरी कामकी ही कदर, तारीफ और नकल करनी चाहिये। मार-काटका हैवानियत भरा काम जो वे करते हैं, वह इन्सानियतके खिलाफ है, मगर दूसरी यानी तामीरी काम खासतौर पर इन्सानियतका काम है और वह साफ और पाक काम है। हमें चाहिये कि हम अपनी कोशिश भर फौजको इन्सान बनाये और उसके अच्छे कामोंकी नकल करें। यह कोशिश करने लायक है, लेकिन ऐसी कोशिश वे लोग ही कर सकते हैं, जो फौजियोंके आस-पासकी शान-शौकत और तड़क-भड़कसे चौंधिया नहीं जाते, और उसके दबदबेमें नहीं आते। यह तभी हो सकेगा जब हम सब तन और मनसे बदलेका ख्याल छोड़कर मौतका सामना करनेको तैयार हो जायेंगे।

हरिजन-सेवक
८ सितम्बर, १९४६

कांग्रेसी मंत्री और अहिंसा

श्री शंकररावदेव लिखते हैं :

"लोगोंकी समझमें यह बात नहीं आ रही है कि जो लोग अपनेको सत्याग्रही कह रहे थे वे वजीर बनते ही फौज और पुलिसका इस्तेमाल क्यों करते हैं? लोग मानते हैं कि धर्म या व्यवहारके रूपमें मानी हुई अहिंसाका यह भंग है। और हमारे ऊपरी ख्यालसे यह सच भी मालूम होता है। कांग्रेसी मंत्रियोंके विचारोंमें और बर्तावमें जो विरोध दिखाई देता है, उसका समर्थन करना आसान न होनेके कारण हमारे कार्यकर्ता उलझनमें पड़ जाते हैं, और इस विसंगतिसे—बेमेल चीजसे—लाभ उठानेवाले कांग्रेसी या कांग्रेसी प्रचारकोंका मुकाबला करना उनके लिये मुश्किल हो जाता है।

"आम तौर पर कांग्रेसियोंकी अहिंसा कमजोरोंकी अहिंसा ही रही है। हिन्दुस्तानकी मौजूदा हालतमें यही हो सकता था, इसे तो आप भी जानते हैं। आप कहते हैं कि

ताकतवरकी अहिंसामें तेज होता है, फिर भी कमजोरको तगड़ा बनानेके लिये आपने अहिंसाका इस्तेमाल करना मंजूर किया है। यही नहीं, बल्कि आप उसके नेता भी बने। इस तरह दुर्बल या कमजोर होते हुए भी आज उसके हाथमें सत्ता आई है। यह असंभव है कि जो लोग अंग्रेजी हुकूमतके खिलाफ अहिंसासे लड़े, वे ही अब हाथमें ताकत लेकर मुल्कमें दंगा-फसादके वक्त भी अहिंसाका इस्तेमाल करके उसे मिटानेको तैयार हों। अगर वे ऐसी कोशिश भी करें, तो न वे उसमें कामयाब होंगे और न इस काममें उन्हें आम-लोगोंकी हमदर्दी ही मिलेगी।

"मैंने आपसे पूछा था कि क्या सत्याग्रही अपने हाथमें ताकत या हुकूमतकी बाग-डोर ले सकता है? अगर ले सकता है, तो उस ताकत या हुकूमतके जरिये वह अहिंसा कैसे आगे बढ़ सकता है? मेहरबानी करके आप इसपर थोड़ी रोशनी डालिये। जिसने अहिंसाको धर्म माना है, वह कभी हुकूमतमें शामिल होना पसन्द न करेगा। और, मेरी राय है, उसे ऐसा करना भी न चाहिये। लेकिन मैं मानता हूँ कि जिन्होंने अहिंसाको सिर्फ नीति या व्यवहारकी दृष्टिसे अपनाया है, उनके लिये पद या ओहदा लेनेमें कोई दिक्कत न होनी चाहिये। बहुतेरे कांग्रेसियोंने ओहदे संभाले हैं, और इसके लिये आपने उन्हें इजाजत दी है। ऐसी हालतमें सवाल यह उठता है कि उन मन्त्रियों या वजीरोंसे जो अहिंसा मानते हैं, आपका यह उम्मीद रखना कि कम-से-कम वे खुद तो दंगा-फसाद के मौकोंपर अहिंसाका इस्तेमाल करें, कहाँ तक मुनासिब है? अहिंसाके जरिये ताकत या हुकूमत हासिल कर लेनेके बाद उसका इस्तेमाल किस तरह किया जाय, जिससे हुकूमत ही गैर-जरूरी हो जाय? अगर ऐसा कोई रास्ता आप न सुझायेंगे, तो हमारे अपने मकसद तक पहुँचनेके लिये यह एक अधूरा साधन माना जायगा।"

मेरे खयालसे इसका जवाब आसान है। कुछ अरसेसे मैंने यह कहना शुरू कर दिया है कि कांग्रेसके विधान या कानूनसे 'सत्य और अहिंसा' को हटा देना चाहिये अगर हम यह मानकर चलें कि कांग्रेसके विधानसे ये दोनों हटें या न हटें, फिर भी इससे हट ही गये हैं, तो स्वतंत्र रूपसे हम समझेंगे कि कोई काम सही है या नहीं।

मैं मानता हूँ कि जब तक लौकिक राज-कारबारमें फौज या पुलिसका इस्तेमाल होगा तबतक हम अंग्रेजी सल्तनत या दूसरी किसी परदेशी सल्तनतके मातहत ही रहेंगे— फिर चाहे देशका कारबार कांग्रेसवालोंके हाथमें हो या दूसरोंके। फर्ज कीजिये कि कांग्रेसी वजारत या मंत्रिमंडलोंको अहिंसामें विश्वास नहीं है। यह भी मान लीजिये कि लोग यानी हिन्दू, मुसलमान और दूसरे हिन्दुस्तानी फौजका और पुलिसका सहारा चाहते हैं। अगर ऐसा है, तो वह उन्हें मिलता रहेगा। जो कांग्रेसी अहिंसामें पूरा विश्वास रखते हैं, वे फौज या पुलिसकी मदद लेनेको अच्छा न समझेंगे। इसलिये वे इस्तीफा दे सकते हैं। इसके मानी यह हुए कि जब तक लोगोंमें आपसमें फैसला करने की ताकत नहीं आती तब तक हुल्लड़बाजी होती रहेगी और हममें अहिंसाका सच्चा बल पैदा ही न होगा।

अब सवाल यह रहा कि ऐसा अहिंसक बल किस तरह पैदा हो सकता है?

इस सवालका जवाब अहमदाबादसे आये हुये एक खतके जवाबमें ता० ४ अगस्तको मैं दे चुका हूं। जब तक हममें बहादुरी और मुहब्बतके साथ मरनेकी ताकत पैदा नहीं होती, तबतक हममें वीरोंकी अहिंसाका बल नहीं आ सकता।

अब सवाल यह है कि आदर्श समाजमें कोई राजसत्ता या एक बिलकुल अराजक समाज बनेगा? मेरे ख्यालमें ऐसा सवाल पूछनेसे कुछ फायदा नहीं हो सकता। अगर हम ऐसे समाजके लिये मेहनत करते रहें, तो वह किसी हद तक बनता रहेगा। और उस हद तक लोगोंको उससे फायदा पहुंचेगा। युक्लिडने कहा है कि लाइन वही हो सकती है, जिसमें चौड़ाई न हो, लेकिन ऐसी लाइन या लकीर न तो आज तक कोई बना पाया न बना पायेगा। फिर भी ऐसी लाइनको ख्यालमें रखनेसे ही प्रगति या तरक्की हो सकती है। और हर एक आदर्शके बारेमें यही सच है।

हां, इतना याद रखना चाहिये कि आज तक दुनियामें कहीं भी अराजक समाज मौजूद नहीं है। अगर कभी कहीं बन सकता है तो उसका आरम्भ हिन्दुस्तानमें ही हो सकता है। क्योंकि हिन्दुस्तानमें ऐसा समाज बनानेकी कोशिश की गई है। आजतक हम आखिरी दरजेकी बहादुरी नहीं दिखा सके। मगर उसे दिखानेका एक ही रास्ता है, और वह यह है कि जो लोग उसमें मानते हैं, वे उसे दिखावें।

हरिजन-सेवक
१५ सितम्बर, १९४६



क्या यह बुजदिली नहीं?

स०—आपकी रायमें कायरता या बुजदिली अहिंसा नहीं, बल्कि अन्यायका विरोध करना अहिंसा है। आप मान चुके हैं कि बेगुनाह आदमियोंको—जैसे कि सविनय-आज्ञा-भंग करनेवाले होते हैं—गिरफ्तार करना और जेल भेजना अन्याय है। लेकिन आपने खुशीसे गिरफ्तार होजाना और जेल जाना मंजूर किया है। क्या यह बेगैरत और कायरतापूर्ण नहीं है?

ज०—आपके सवालसे साफ मालूम होता है कि आप नहीं जानते कि अहिंसा किस तरह काम करती है। अन्यायी कानून खुद एक किस्मकी हिंसा है। उसे तोड़नेवालेको गिरफ्तार करना उससे भी बड़ी हिंसा है। अहिंसाका कानून कहता है कि हिंसाका मुकाबला हिंसासे नहीं, बल्कि अहिंसासे करना चाहिये। हर एक कानूनको तोड़नेकी सजा मुकर्रर है। मेरे किसी कानूनको अन्यायपूर्ण कहनेसे ही तो वह वैसा नहीं बन जाता। फिर भी मेरी रायमें वह अन्याय तो है ही। सरकारको हक है कि जब तक वह कानून उसकी किताबमें मौजूद है, तब तक वह उसकी तामील कराये। और मेरा धर्म यह है कि मैं

उसका मुकाबला अहिंसाके जरिये करूँ। ऐसा करनेके लिये मैं उस कानूनको तोड़ूँगा और शान्तिसे गिरफ्तार होकर जेल जाऊँगा। इसे मैं उस हद तक बहादुरीका काम समझता हूँ, जिस हद तक कि बहादुरी इसके लिये जरूरी है। अगर यह भी मान लिया जाय कि एक मामूली कैदी-का-सा सलूक मेरे साथ हो तो भी मेरी दिमागी हालतमें वह कोई फर्क नहीं पैदा कर सकता। सो भी यह सवाल पेश होता है कि आज मेरे जैसे आदमीके लिये जेल जाना कोई मुश्किल और तकलीफदेह नहीं रहा है। इस तरह गिरफ्तारीकी मुखालिफत न करना अहिंसाकी एक लाजिमी शर्त हो जाती है, कायरताकी निशानी हरगिज नहीं। इसके बरखिलाफ मुखालिफत करना, यानी गिरफ्तार होनेसे इनकार करना, सचमुचकी शेखीमारी और बेमतलब हिंसा कही जायगी। इसे बुजदिलका डींग मारना तक कहा जा सकता है।

हरिजन सेवक
२२ सितम्बर, १९४६

❀

सवाल-जवाब

स०—दुनियामें जिधर देखो उधर मारा-मारी, दूसरोंके हक छीनना, और जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली मसल सिद्ध करनेकी बात चल रही है। और यह भी इंगलैंड और अमेरिका जैसे देशोंमें हो रहा है, जहां लोकमतको ही सबसे ऊंची जगह दी गई है। ऐसी हालतमें आपकी अहिंसा क्या कर सकती है? इसके बारेमें आपने विचार प्रकट किया है?

ज०—जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली कहावत चल रही है यह सच है। मगर इंगलैंड और अमेरिकामें लोकमतको सबसे ऊँची जगह दी गई है, यह मानना मेरी समझमें भूल है। लोगोंकी आवाज यानी परमेश्वरकी आवाज। इसीलिये हम लोग कहते हैं कि पंच यानी परमेश्वर। मगर जहाँ पंच ही दूसरोंको खा जायँ, वहाँ यह कैसे कहा जा सकता है कि पंचोंकी आवाज परमेश्वरकी आवाज है। अमेरिका और इंगलैंड रंगदार लोगोंकी मेहनत पर निर्भर हैं। वे लोगोंको चूसते हैं, यह तो हम देखते ही हैं। इनकी मिसाल देनेकी जरूरत नहीं। दूसरों पर जीनेवालोंमें भी सहयोग हो सकता है। इसलिये उनकी आवाज पंचकी आवाज नहीं कही जा सकती। जहाँ पंचकी आवाज परमेश्वरकी आवाजके समान हो वहाँ पंच दूसरोंका खून चूसकर जीनेसे इनकार करेगा। उसकी तराजूके एक पलड़ेमें सत्य और दूसरेमें अहिंसा होगी। इसलिये वह तराजू हमेशा पूरा तोलेगा। इसमें मेरा जवाब आ जाता है। मेरी अहिंसा लूली नहीं। दुर्बल भी नहीं। वह सबसे बड़ी-बड़ी चीज है। क्योंकि जहाँ अहिंसा है, वहाँ सत्य है। और सत्य है सो परमेश्वर है। परमेश्वर कैसे काम करता है, सो मैं नहीं जानता। इतना जानता हूँ कि वह

सब जगह है। और जहां वह है, वहां खैर ही है। यानी वहां सबके लिये एक सा न्याय है ही। दुनियाके जिस हिस्सेमें सत्य और अहिंसाका सिक्का चलेगा, वहीं परम शान्ति और परम सुख होगा। अगर शान्ति और सुख कहीं नहीं है, तो हमें समझना चाहिये कि सत्य और अहिंसा भी आज लुप्त हैं। मगर वे बिलकुल गायब तो हो ही नहीं सकते। इसलिये जिसे विश्वास है, वह विश्वासरूपी नावमें बैठकर तरेगा और आखिर सबको तारेगा।

हरिजन-सेवक
२९ सितम्बर, १९४६

*

सच और अहिंसाको न छोड़ें

एक सेवाभावी भाई अपना नाम देकर कहते हैं :—

"आपका हफ्तेवार अखबार 'हरिजन-बन्धु' में नियमित मंगाता हूं और पढ़ता हूं। १५ सितम्बरके 'हरिजन-बन्धु'के ३१७वें पन्नेपर श्री शंकरराव देवको दिये गये जवाबमें आपने लिखा है—'मैंने कुछ समयसे कहना शुरू कर दिया है कि कांग्रेसके विधान (निजाम)में से सच और अहिंसाको निकाल देना चाहिये।'

"आजकी हालातमें ऐसा होगा, तो कांग्रेसपर से लोगोंका विश्वास उठ जायगा। लोग ऐसा समझेंगे कि जबतक कांग्रेसके हाथमें ताकत नहीं आई थी, वह लोगोंको सच और अहिंसापर चलनेको समझाती थी। आज ताकत हाथमें आते ही अपने निजाममेंसे सच और अहिंसाको निकालनेकी सोच रही है।

"शायद लोग यह भी समझें कि मुस्लिम लीगने 'सीधे सामने' का जो ठहराव पास किया है, उसका सामना करनेके लिये आप इन दो लफ्जोंको निकाल देनेकी बात कहते हैं।

"अगर कांग्रेसके विधानसे, ये दो शब्द, जिनके जरिये कांग्रेस इतना आगे बढ़ी है, और आज ऊंची चोटी पर बैठी है, निकल जायेंगे, तो कांग्रेस फौरन नीचे गिर जायगी। उसकी आबरू हलकी पड़ जायगी। आप ही कहते थे कि सच और अहिंसा बिना आपसे एक कदम भी आगे नहीं चल सकते।

"किस कारण लोग कांग्रेसवालोंको विश्वासके लायक, दयालु, सेवाभावी, हिम्मत-वाले वगैरह वगैरह मानते आये हैं? सच और अहिंसाके ही कारण। सच और अहिंसा उसकी जड़ है। जड़के नाश होनेसे सारा का सारा दरख्त अपने आप सूख जायगा। आपको तो यह कोशिश करनी चाहिये कि वह जड़ ज्यादा से ज्यादा गहरी हो।"

अहिंसाका दावा करनेवाला मैं अच्छा काम करनेके लिये भी किसीको मजबूर कैसे

कर सकता हूँ ? एक महान् अंग्रेजने कहा है कि आजाद रहकर भूल करनी भली, मगर मजबूर होकर अच्छा करना बुरा है। मैं इस बातको मानता हूँ। कारण साफ है। जो दूसरोंके दबावसे अच्छा रहता है उसका दिल अच्छा नहीं रहता है, उलटा ज्यादा बिगड़ जाता है। और जब दबाव हट जाता है तो अंदर रहा बिगाड़ ऊपर आ जाता है।

और किसी एक व्यक्ति (शख्स) के पास तो किसीपर दबाव डालनेकी ताकत होनी ही न चाहिये। कांग्रेसकी जबरदस्ती किसीसे सच या अहिंसापर अमल नहीं करवा सकती। ऐसी चीज खुशीका सौदा ही होना चाहिये।

सच और अहिंसाको कांग्रेसके विधानमेंसे निकालनेकी बात पेश किये मुझे एक साल-से ज्यादा अरसा हो गया है। लीगकी तरफसे हिंसा अहिंसाका ख्याल किये बिना सीधा शासना करनेकी बात आई, उससे पहले ही मेरी यह सूचना निकल चुकी थी। मेरी सलाहका लीगके ठहरावके साथ कोई ताल्लुक नहीं। तो भी जिन्हें मेरी बातमें दाँव-पेंच-की बदबू आया ही करे, उनके लिये मेरे पास कोई इलाज नहीं है।

मेरी सलाहके पीछे जोरदार कारण है। सच और अहिंसाका बहाना करके कांग्रेसका झूठ और हिंसासे बचना, कोई मामूली आधार नहीं। अगर कांग्रेसी दिखावा न करे, और सचमुच सच और अहिंसाके इन दो खंभोंको पकड़े रहे, तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है?

मैं तो कभी यह इच्छा या ख्वाहिश कर ही नहीं सकता कि ताकत हाथमें आनेपर कांग्रेसी सच और अहिंसाकी उस सीढ़ीको छोड़ दें, जिसके कि सहारे वे इतने आगे बढ़े हैं। मैं मानता हूँ कि कांग्रेस अगर ताकत पाकर इस सीढ़ीको छोड़ेगी, तो उसका तेज (नूर) बिलकुल मन्द पड़ जायगा।

एक और भूलसे सबको बचना चाहिये। जो विधान (निजाम) में नहीं लिखा उसपर किसीको अमल नहीं करना चाहिये, ऐसी बात तो है ही नहीं। मैंने तो आशा रखी ही है, कि सच और अहिंसाके विधानमें से निकल जाने पर भी सब या ज्यादातर कांग्रेसी अपनी इच्छासे उनपर अमल करेंगे और करते करते मरेंगे भी।

एक भूल, जिसका जिक्र इन सेवाभावी भाईने नहीं किया, सुधार दूं। कांग्रेसके विधान में पुरअमन और योग्य (लेजिटिमेट) लफ्ज हैं उन्हें अहिंसक (नानवायोलण्ट) और सच्चा (ट्रूथफुल) माननेका मुझे हक नहीं। कांग्रेसके पास धर्म नहीं, कर्म ही है। अंग्रेजीमें उसे 'पालिसी' कहेंगे। मेरे हकका तो सवाल ही नहीं। मगर जबतक कर्म चलता है, तबतक वह धर्म हो जाता है, यानी उसपर अमल करनेका बन्धन होता है। अगर शान्ति या अमनका मतलब अशान्ति या बेअमनी भी हो सकता है, और योग्यका मतलब झूठ भी हो सकता हो, तो मेरी सलाहकी कोई जगह नहीं रह जाती।

हरिजन-सेवक
२९ सितम्बर, १९४६

हिंसाके तरीके

सीधी लकीर एक ही होती है। अहिंसा एक सीधी लकीर है। जो लकीरें सीधी नहीं, वे कई तरहकी होती हैं। जिस बच्चेने कलम पकड़ना सीख लिया है, वह और कितनी ही तरहकी लकीर चाहे खींच ले, मगर एक सीधी लकीर नहीं खींच सकता। धोखेसे अगर एक आध बार बन जाय तो दूसरी बात है। कई लोग पूछते हैं कि मैंने जिस हिंसाकी इजाजत दी है, क्या उसमें वे सब बातें आ सकती हैं, जिनका वे अपने खतमें जिक्र करते हैं। यह अजीब बात है कि सभी खत अंग्रेजीमें लिखे हुए हैं। इन लिखनेवालोंको मेरा लेख दुबारा पढ़ जाना चाहिये। तब उन्हें मालूम हो जायगा कि क्यों मैं इन सवालोंका जवाब नहीं दे सकता। शायद मैं इसलिये भी जवाब देने लायक नहीं हूँ कि मैंने कभी हिंसा की ही नहीं। असलमें तो मैंने कभी हिंसाकी इजाजत भी नहीं दी। मैंने बहादुरी और डरपोकपनके दो नमूनोंका ही बयान किया है। कानूनी चीज तो अहिंसा ही है। यहाँ बताये गये अर्थमें हिंसा कभी जायज नहीं हो सकती—यानी इन्सानके बनाये कानूनकी रूसे नहीं, बल्कि इन्सानके लिये कुदरतके बनाये कानूनकी रूसे हिंसा कभी कानूनी नहीं हो सकती। अपने या किसी निरअपराधके बचावके लिये जो हिंसा की जाती है, वह भी वैध या कानूनी तो नहीं होती, फिर भी वह बहादुरीका काम जरूर है जो डरकर शरण जानेसे कहीं अच्छा है। डरपोकपन किसीको शोभा नहीं देता—न आदमीको, न औरतको। हिंसामें भी बहादुरीकी कई किस्में और कई दरजे होते हैं। हर एक आदमीको इसका फैसला खुद करना चाहिये। दूसरा कोई न तो उसे कर सकता है, न उसे करनेका हक है।

हरिजन-सेवक
२७ अक्तूबर, १९४६

श्रद्धाको चुनौती

(अमेरिकाकी 'एसोशियेटेड प्रेस' नामकी खबर भेजनेवाली संस्थाके संवाददाताने ता० ६–११–'४६के दिन जो सवाल पूछे थे, और गांधीजीने जो जवाब दिये थे, वे नीचे दिये जाते हैं:—)

सवाल १—सन् १९४२ की अशान्ति, आजादहिन्द फौजकी कार्रवाई और उससे ताल्लुक रखनेवाली अशान्ति, हिन्दुस्तानके शाही नौकादलके मल्लाहोंकी बगावत, कलकत्ता और बंबईके दंगे, कश्मीर जैसी देशी रियासतोंमें होनेवाली हलचलें, और हालके कौमी

दंगे—हिन्दुस्तानके इतिहासमें अभी-अभी जो घटनायें घट गईं, उनसे पता चलता है कि हिन्दुस्तानके समाजमें अहिंसाने अभी अपनी जड नहीं जमाई है। तो क्या इन सब बातोंको देखते हुये नहीं कहा जा सकता कि आपका अहिंसा-धर्म नाकाम साबित हुआ है ?

ज०—ऐसे किसी आम नतीजे पर पहुँचना बहुत खतरनाक है। आपने जिन-जिनका जिक्र किया है, वे सब जरूर ही हिंसाके काम कहे जा सकते हैं, लेकिन उससे हरगिज नहीं कहा जा सकता कि अहिंसा धर्म नाकाम साबित हुआ है। ज्यादासे ज्यादा आप यह कह सकते हैं कि आम लोगोंकी मजमूई जहनियतको बदलनेके लिये काम करनेके जिस तरीकेकी जरूरत है, वह तरीका मुझे अभी नहीं मिला है, या उसे मैं अभीतक खोज नहीं सका हूं। लेकिन मेरा दावा यह है कि हिन्दुस्तानके सात लाख गांवोंमें रहनेवाले करोड़ों लोग उस हिंसामें शरीक नहीं हुए हैं, जिसका जिक्र आपने किया है। हिन्दुस्तानी समाजके जीवनमें अहिंसाकी भावनाने जड़ जमाई है या नहीं, यह सवाल अभी खड़ा ही है, और इसका ठीक-ठीक जवाब तो मेरी मौतके बाद ही दिया जा सकता है।

स०-२—अपनी प्रकृतिमें बहादुरोंकी अहिंसाको सिद्ध करनेके लिये आदमी अपने रोज-रोजके जीवनमें क्या करे ? यानी वह कम से कम किस तरहके कामोंको, किस कार्य-क्रमको, अपनाये ?

ज०—अपने जीवनमें बहादुरोंकी अहिंसाका विकास करनेकी ख्वाहिश रखनेवाले आदमीको सबसे पहले अपने मनसे या विचारोंसे कमसे कम बुजदिलीका मैल धो डालना चाहिये, और इस तरह साफ बने हुए विचार या दिमागके पीछे चलकर हर एक छोटा या बड़ा काम करना चाहिये। मसलन अहिंसाकी साधना करनेवाला अपने बड़े अफसरकी धाकसे दब नहीं जायगा, और न उसपर गुस्सा ही करेगा। साथ ही, वह अपनी ज्यादा-से ज्यादा आमदनी वाली जगहको छोड़नेके लिये भी तैयार रहेगा। अपना सब कुछ छोड़ देने पर भी अहिंसाके साधकके दिलमें अपने सेठ या नौकरी दिलानेवालेके लिये चिढ़ या गुस्सा न हो, तो कहा जायगा कि उसमें बहादुरोंकी अहिंसा प्रकट हुई है। दूसरी मिसाल लीजिये। फर्ज कीजिये कि हमारे साथ सफर करनेवाला कोई मुसाफिर मेरे लड़के पर हमला करनेकी धमकी देता है, और मेरे उसे समझानेकी कोशिश करनेपर वह मुझ ही पर उलट पड़ता है। अगर ऐसे समयमें मैं उसका तमाचा अपनी शान और भलमनसाहतके साथ स्वीकार कर लूं, और मनमें उसके लिये कोई बुरा ख्याल न रखूं तो कहा जायगा कि मैंने बहादुरोंकी अहिंसासे काम लिया। ये बातें हर आदमीकी जिन्दगीमें रोज-रोज होती रहती हैं, और ऐसी कई दूसरी मिसालें आसानीसे दी जा सकती हैं। इस तरहके हर मौके पर मैं अपने मिजाजपर काबू रखनेमें सफल होऊं, और उलट कर तमाचा या घूंसा मारनेकी ताकत होनेपर भी चुप रह जाऊं, तो मुझमें बहादुरोंकी अहिंसाका विकास हो, वह मुझे कभी दगा न दे, और कट्टरसे कट्टर विरोधियोंको उस अहिंसाकी दाद देनी पड़ जाय।

हरिजन-सेवक
१७ नवम्बर, १९४६

बहनोंकी दुविधा

सवाल—जब बदमाश लोग किसी औरत पर हमला करें, तो उसे क्या करना चाहिये? वह भाग जाय या हिंसासे उनका मुकाबला करे? यानी वह भाग जानेके लिये डोंगियाँ तैयार रखे, या हथियारोंसे अपना बचाव करनेको तैयार रहे?

जवाब—इस सवालका मेरा जवाब बहुत सीधा व सादा है। क्योंकि मेरे ख्यालमें हिंसाकी कोई तैयारी नहीं हो सकती। अगर ऊँचीसे ऊँची किस्मकी हिम्मत बढ़ानी हो, तो हमें अहिंसाके लिये ही सारी तैयारी करनी चाहिये। बुजदिलीकी बनिस्बत हिंसाको हमेशा तरजीह देनेकी निगाहसे ही हिंसा बरदाश्त की जा सकती है। इसलिये मैं खतरेके वक्त भाग निकलनेके लिये डोंगियाँ तैयार न रखूंगा। अहिंसक आदमीके लिये खतरेका कोई समय होता ही नहीं। उसे तो मौतकी खामोश और शानदार तैयारी करनी होती है। इसलिये कहींसे कोई मदद न मिलनेपर भी अहिंसक औरत या मर्द हँसते-हँसते मौतका सामना करेगा, क्योंकि सच्ची मदद तो भगवानसे ही मिलती है। मैं इसके सिवा दूसरी कोई बात सिखा नहीं सकता, और जो मैं सिखाता हूँ, उसीपर अमल करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। मैं नहीं जानता कि मुझे ऐसा मौका कभी मिलेगा या दिया जायगा। जो औरतें गुण्डोंके हमला करनेपर बगैर हथियारके उनका सामना नहीं कर सकतीं, उन्हें हथियार रखनेकी सलाह देनेकी जरूरत नहीं। वे तो वैसा करेंगी ही। हथियार रखने या न रखने की इस हमेशाकी पूछताछमें जरूर ही कोई न कोई खामी है। लोगोंको कुदरती तौरपर आजाद रहना सीखना पड़ेगा। अगर वे मेरी इस खास नसीहतको याद रखें कि अहिंसासे ही सच्चा और कारगर मुकाबला किया जा सकता है तो वे इसीके मुताबिक अपना व्यवहार बना लेंगे और बगैर सोचे समझे ही क्यों न हो मगर दुनिया तो यही करती रही है। क्योंकि दुनियाकी हिम्मत ऊँचेसे ऊँचे नमूनेकी यानी अहिंसासे पैदा हुई हिम्मत नहीं है। इसलिये वह अपनेको ऐटमबमसे लैस रखनेकी हद तक पहुँची है। जो लोग उसमें हिंसाकी व्यर्थताको नहीं देख पाते, वे कुदरती तौरपर अपनेको अच्छेसे अच्छे हथियारोंसे लैस रखे बिना न रहेंगे।

जबसे मैं दक्खिनी अफ्रीकासे लौटा हूँ, तभीसे हिन्दुस्तानमें अहिंसाकी सोची-समझी तालीम बराबर दी जा रही है और उसका जो नतीजा निकला है, सो हम देख चुके हैं।

सवाल—क्या किसी औरतको गुंडोंके सामने झुकनेके बजाय खुदकुशी करनेकी सलाह दी जा सकती है?

जवाब—इस सवालका ठीक-ठीक जवाब देनेकी जरूरत है। नोआखालीके लिये रवाना होनेके पहले मैंने दिल्लीमें इसका जवाब दिया था। कोई भी औरत आत्म-समर्पण करनेके बजाय यकीनन खुदकुशी करनेकी सलाह ज्यादा पसन्द करेगी। दूसरे शब्दोंमें

जिन्दगीकी मेरी स्कीममें आत्म-समर्पणकी कोई जगह नहीं है। लेकिन मुझसे यह पूछा गया था कि आत्म-हत्या या खुदकुशी कैसे किया जाय? मैंने तुरंत जवाब दिया कि आत्महत्याके साधन सुझाना मेरा काम नहीं और ऐसी हालतमें आत्महत्याकी मंजूरी देनेके पीछे यह विश्वास था और है कि जो आत्महत्या करनेके लिये भी तैयार हैं, उनमें ऐसे मानसिक विरोध और आत्माकी ऐसी पवित्रताके लिये वह जरूरी ताकत मौजूद है, जिसके सामने हमला करनेवाला अपने हथियार डाल देता है। मैं इस दलीलके आगे नहीं बढ़ सकता, क्योंकि उससे आगे बढ़नेकी गुंजाइश नहीं है। मैं कबूल करता हूँ कि इसके लिये जिस पक्के सबूतकी जरूरत है, वह मिल नहीं रहा है।

सवाल—अगर अपनी जान देने और हमला करनेवालेकी जान लेनेमें से किसी एकको चुननेका सवाल हो तो आप क्या सलाह देंगे?

जवाब—जब अपनी जान देने या हमला करनेवालेकी जान लेनेमेंसे किसी एकको पसन्द करनेका सवाल हो, तो बेशक, मैं पहली चीजको ही पसन्द करूँगा।

हरिजन-सेवक
९ फरवरी, १९४७



अहिंसा-जीवनका सत्य

सवाल—आपकी अहिंसाकी सीखसे प्रभावित होनेवाले हिन्दू शायद जल्दी ही मुस्लिम लीगियों द्वारा दबा दिये जायेंगे। आज लोग आमतौर पर यह महसूस करने लगे हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि मुसलमानोंको छिपे-छिपे हथियारबन्द किया जा रहा है।

जवाब—यह मान लेना खतरनाक है। अगर यह सच है, तो सूबा सरकारोंके लिये बड़ी बदनामीकी बात है। हर हालतमें मेरी बड़ी इच्छा है कि हिन्दुओंपर मेरी अहिंसाकी सीखका असर पड़े। अहिंसाकी ताकत हथियारोंकी बड़ीसे बड़ी ताकतसे भी कहीं बड़ी है। अगर लोग किसी उपदेशककी सीखकी हँसी उड़ावें, तो इसके लिये वह जिम्मेदार नहीं। क्या हम नहीं जानते कि लापरवाह विद्यार्थी जामेट्रीके दावे साबित करनेके लिये कैसी बेसिरपैरकी दलीलें देते हैं? लेकिन क्या इसका दोष शिक्षकोंके माथे मढ़ा जाय? मेरे बारेमें ज्यादासे ज्यादा यही कहा जा सकता है कि मैं अहिंसाकी सीख देने लायक नहीं हूँ। अगर यह ठीक है तो हम भगवानसे प्रार्थना करें कि मेरा वारिस मुझसे बहुत ज्यादा काबिल और ज्यादा कामयाब साबित हो।

सवाल—हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोंके चले जानेके बाद, मुमकिन है कि देशमें चारों तरफ अन्धेर और अराजकताका बोलबाला हो जाय। यह अंदेशा है कि यदि राष्ट्रवादियोंने

जल्दी ही बन्दूकों और पिस्तौलोंसे अपनी हिफाजत करना नहीं सीखा, तो उन्हें मारें भी सहनी पड़ेंगी। मुस्लिम लीग, जिसके मेम्बर लड़ाईमें ही विश्वास करते हैं, आखिर उन्हें कुचल देगी। पाकिस्तान बने या न बने, लेकिन मुसीबत तो आ ही रही है। क्योंकि साम्राज्यवादी छिपे तौरसे इसमें मदद कर रहे हैं। क्या देशकी आइन्दा सियासी हालतको ध्यानमें रखते हुए, आप अहिंसाके उसूलमें कोई ऐसी तब्दीली नहीं करेंगे, जिससे लोग अपनी हिफाजत कर सकें?

जवाब—जैसा कि आपका खयाल है, अगर राष्ट्रवादी लोग मुस्लिम लीगसे डरते हैं, तो वे अपनी आजकी इज्जत और शोहरतके लायक नहीं हैं। क्या वे लोग मुस्लिम लीगको अपनी सेवाके क्षेत्रसे बाहर रख सकते हैं? मैं यहाँ वोट पानेकी तरकीबके बारेमें नहीं सोच रहा हूँ। मैं तो मुसलमानोंको दूसरोंकी तरह हिन्दुस्तानी ही मानता हूँ। राष्ट्रवादियोंको उनकी परवाह करनी चाहिये और उनकी तरफ ध्यान देना चाहिये। अगर नेताओंने अहिंसामें विश्वास करना छोड़ दिया है, तो उन्हें हिम्मतके साथ साफ-साफ ऐसा कह देना चाहिये और अपनी गलती सुधार लेना चाहिये। मैं खुद तो अपने अहिंसाके उसूलमें तब्दीली नहीं कर सकता, अहिंसा मेरे लिये एक उसूल ही नहीं, वह मेरे जीवनका सत्य बन गई है; जिसका आधार मेरा बरसोंका तजरबा है। जो आदमी बार बार मीठे सेब खा चुका है, उसे उन्हें कड़वे कहनेके लिये कैसे राजी किया जा सकता है? जो मीठे-मीठे सेबोंको कड़वे कहते हैं, वे लोग सेब नहीं खाते बल्कि सेबकी तरह दिखाई देनेवाले कोई दूसरे फल खाते हैं। अहिंसाको साम्राज्यवादियोंके छिपे या खुले कामोंसे डरना नहीं चाहिये। यहाँ मैं दलीलके लिये यह मान लेता हूँ कि सवालमें बताये गये ढंगपर साम्राज्यवादी अपना काम कर रहे हैं।

हरिजन-सेवक
२५ मई, १९४७

४३

हिंसाका मुकाबला कैसे किया जाय?

सवाल—लीगके नेता और उसके अनुयायी अपनी मुराद हासिल करनेके लिए अहिंसामें एतबार नहीं करते। इस हालतमें यह किस प्रकार संभव है कि लीगवालोंका हृदय जीता जाय, या उन्हें इस बातका विश्वास दिया जाय कि हिंसात्मक साधन बुरा है?

जवाब—हिंसाका सही प्रतिकार अहिंसासे हो सकता है। यह सनातन सत्य है। जिस भाईने सवाल किया है, उनका विश्वास अहिंसापर नहीं हो सकता। क्योंकि इस अहिंसारूपी शस्त्रके आगे हिंसक शस्त्र, चाहे वह एटमबम ही क्यों न हो, बेकार होता है। यह बिलकुल दूसरी बात है कि ऐसे बुलन्द शस्त्र जाननेवाले लोग बहुत कम होते हैं। उस (अहिंसक) शस्त्रके उपयोगमें जान और दिलकी ताकतकी काफी दरकार होती है। उसमें

मिलिटरी स्कूल-कालेजोंमें बरसों तालीम लेनेकी बात नहीं होती। लेकिन दिल साफ करनेकी जरूरत होती है। जितनी मुश्किल हमको हिंसाका सामना करनेमें आती है, वह सब हमारे दिलकी कमजोरीकी निशानी है। दूसरी बात यह भी है कि अब तो कायदे आजम जिन्नाने ऐसी बुलन्द बात कही है कि अपने हकको पानेके लिये यानी पाकिस्तान पानेके लिये हिंसाका इस्तेमाल करना मुनासिब नहीं है।

यह बात उन्होंने सरहदी सूबोंसे जो लोग उनसे मिलने गये थे, उनसे साफ-साफ लफ्जोंमें कही है। उसे हम न भूलें।

सवाल—बहुतसे लोगोंका ऐसा ख्याल होता जा रहा है कि पाकिस्तानके समर्थकोंके साथ संघर्ष-शायद हिंसात्मक ढंग का—होना अनिवार्य है। अगर राष्ट्रवादी ऐसा समझे कि जबतक लीग पंजाब और बंगालके बँटवारेके लिए सहमत नहीं हो जाती, तबतक पाकिस्तानकी मांग ठीक नहीं है, तो कांग्रेसी किस साधनका अवलम्बन करे?

जवाब—अगर पहले सवालका जवाब ठीक समझमें आया है, तो दूसरा सवाल उठ ही नहीं सकता। फिर भी बात साफ करनेके कारण, मैं जवाब दे रहा हूं। अगर जिन्ना साहबका कहना सब मुसलमान या लीगी मुसलमान मान लें, तब तो हिंसात्मक ढंगका झगड़ा हो ही नहीं सकता और हिन्दू बड़ी तादादमें अहिंसाका सहारा लें, तो मुसलमान कितनी भी हिंसा करें, वह हिंसा बेकार होगी। एक बात और भी समझ लेनी चाहिये। जो लोग अहिंसाके पुजारी हैं वे गैर मुनासिब ख्याल तक भी न करें, ऐसा काम तो कर ही नहीं सकते। इसलिये अगर पाकिस्तान ठीक नहीं है, तो बंगाल और पंजाबके टुकड़े भी ठीक नहीं है।

सवाल—अधिकतर समाजवादियोंका यह विश्वास है कि सामाजिक क्रान्ति होनेसे हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा पीछे पड़ जायगा और आर्थिक सवाल पीछे पड़ जायेंगे। क्या आपकी समझसे यह अच्छा होगा कि ऐसी क्रान्ति हो? क्या इससे राम-राज्य कायम होनेमें मदद मिलेगी?

जवाब—सामाजिक क्रान्तिसे हिन्दू मुस्लिम झगड़ा कुछ हदतक तो ढीला पड़ेगा। इतना तो हम सबको साफ होना चाहिये कि झगड़ोंके बहुतसे कारण होते हैं। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा मिट जानेसे सब झगड़े मिट जाते हैं ऐसा तो नहीं कह सकते। इतना ही कहा जाय कि हिन्दू-मुसलिम झगड़ोंने एक भयंकर रूप ले रखा है। छोटे मोटे दूसरे झगड़े मिट जानेसे इस भयंकरताका रूप कम हो जायगा, इसमें शक नहीं।

जब गुलामी मिटकर आजादी आती है, तब समाजकी सारी व्याधियां (बुराइयां) ऊपर आ जाती हैं। इससे भड़कनेका मैं कोई कारण नहीं पाता। अगर ऐसे मौके पर हमारा मन स्थिर रहे, तो सब साफ हो जाता है। हर हालतमें आर्थिक सवालको हल होना ही है।

आज आर्थिक असमानता है। समाजवादी जड़में आर्थिक समानता है। थोड़ोंको करोड़ और बाकीको सूखी रोटी भी नहीं, ऐसी भयानक असमानतामें राम-राज्यका दर्शन

करनेकी आशा कभी न रखी जाय। इसलिये मैंने दक्षिणी अफ्रीकामें ही समाजवादको स्वीकार किया था। मेरा समाजवादियों और दूसरोंसे यही विरोध रहा है कि सब सुधारोंके लिये सत्य और अहिंसा ही सर्वोपर (सबसे अच्छा) साधन हैं।

सवाल—आप कहते हैं कि राजा, जमींदार और पूंजीपति संरक्षक बनकर रहें। आपके ख्यालसे क्या ऐसे राजा, जमींदार या पूंजीपति अभी मौजूद हैं? या वर्तमान राजा वगैरहमें से किन्हींके इस प्रकार बदल जानेकी उम्मीद है?

जवाब—मेरे ख्यालसे ऐसे राजा, जमींदार और पूंजीपति अभी हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि वे पूरे-पूरे संरक्षक बन गये हैं। लेकिन उनकी गति उस ओर है।

मौजूदा राजा वगैरहके संरक्षक बननेकी उम्मीद रखी जाती है या नहीं, यह सवाल पूछने लायक है।

मेरी दृष्टिसे वह उम्मीद जरूर रखी जाय। वे लोग अपने आप संरक्षक न बनें, तो समय उन्हें बनावेगा। अथवा उनका नाश हो जायगा। जब पंचायत-राज बनेगा, तब लोकमत सब कुछ करवा लेगा।

जमींदारी, पूंजी अथवा राजसत्ताकी ताकत तबतक ही कायम रह सकती है, जबतक आम लोगोंमें अपनी ताकतकी समझ नहीं होती। लोग रूठें तो राजा जमींदार, या पूंजी-पति क्या कर सकता है? पंचायत-राजमें पंचका ही चलनेवाला है और पंच अपना काम कानूनसे कर लेता है। अगर पंचका कारोबार अहिंसासे चलेगा, तो तीनों मालिक कानूनसे संरक्षक बनेंगे और हिंसासे चलेगा, तो उनकी मालिकी बुझ जायगी।

हरिजन-सेवक
१ जून, १९४७ ई०



अहिंसा

(१५-६-४७ की प्रार्थना सभामें पढ़कर सुनाये गये गांधीजीके लिखित सन्देशमेंसे नीचेका हिस्सा लिया गया है)

दुनियाके अनेक देशोंसे जो मुझसे सवाल पूछा गया है आज मैं उसीका जवाब देना पसन्द करूंगा। वह सवाल इस तरह हैं:—

आपके देशमें सियासी पार्टियाँ अपना अपना सियासी मकसद आगे बढ़ानेके लिये हिंसाका दिन-दिन ज्यादा इस्तेमाल करने लगी हैं। इसकी वजह आप बतायें? ब्रिटिश हुकूमतको खत्म करनेके लिये पिछले तीस सालसे अहिंसाका जो तरीका अपनाया गया, कहीं उसीका तो नतीजा नहीं है? क्या अभी भी दुनियाके लिये आपका अहिंसाका संदेश

काम आ सकता है ? मैंने सवाल पूछनेवालोंकी भावनाओंका अपने शब्दोंमें यहाँ सार दिया है।

इसके जवाबमें मुझे अहिंसाका नहीं बल्कि अपना दिवालियापन कबूल करना चाहिये। इसके पहिले मैंने साफ साफ कह दिया है कि पिछले तीस वर्षोंमें जिस अहिंसाका इस्तेमाल किया गया, वह कमजोरोंकी अहिंसा थी। मेरा यह जवाब ठीक या काफी है कि नहीं यह तो दूसरोंको बताना होगा। इसके बाद एक दूसरी बात भी स्वीकार करनी होगी कि आजके बदले हुए संयोगोंमें कमजोरोंकी अहिंसा कुछ काम नहीं दे सकती। हिन्दुस्तानको बहादुरोंकी अहिंसाका तजुरबा नहीं है। अगर मैं बराबर यह कहता रहूँ कि बहादुरोंकी अहिंसा दुनियामें सबसे बड़ी शक्ति है, तो उससे मेरा कोई मतलब हल नहीं होता। इस सत्यका लगातार बड़े प्रमाणमें प्रत्यक्ष प्रयोग कर दिखानेकी जरूरत है। मुझमें जितनी शक्ति है, उसका पूरा पूरा इस्तेमाल करके मैं यही कर दिखानेकी कोशिश कर रहा हूँ। अगर मेरी बेहतरीन काबिलियत बहुत थोड़ी हो, तो उससे क्या ?

कहीं मैं शेखचिल्लीके रास्ते तो नहीं जा रहा हूँ ? मैं ऐसी फिजूलकी खोजमें अपने पीछे चलने या अपना साथ देनेके लिये दूसरोंको क्यों कहूं ? ये सब सवाल पूछने लायक हैं। इन सबका मेरा जवाब बिलकुल सीधा और सरल है। मैं किसीको अपने पीछे चलने या अपना साथ देनेके लिये नहीं कहता। हर एक स्त्री और पुरुषको अपने अन्तरकी आवाजको मानना चाहिये। अगर कोई स्त्री या पुरुष अपने अन्तरकी आवाजको न सुन सके तो उसे अपनी योग्यताके मुताबिक जितना हो सके कर गुजरना चाहिये। लेकिन कोई स्त्री या पुरुष भेड़की तरह दूसरोंके पीछे न चले।

एक और भी सवाल पूछा गया है और पूछा जाता है........अगर आपको विश्वास है कि हिन्दुस्तान गलत रास्ते जा रहा है, तो आप गलत काम करनेवालोंसे क्यों संबंध रखते हैं ? आप अकेले अपने सही रास्तेपर क्यों नहीं जाते ? और आप यह श्रद्धा क्यों नहीं रखते कि आपकी बात सच होगी ही। आपको छोड़ देनेवाले आपके दोस्त और अनुयायी आपको फिर खोज लेंगे। यह बिलकुल उचित सवाल है। मैं इसके खिलाफ कोई दलील देनेकी कोशिश नहीं करूँगा। मै सिर्फ यही कहूँगा कि मेरी श्रद्धा पहले जैसी आज भी दृढ़ है। हो सकता है कि मेरा कामका तरीका गलत है। आजकी अटपटी हालतमें तो पहलेकी परखी हुई और पुरानी मिसालें ही दिशा बतानेके लिये हमारे सामने हैं। लेकिन एक बातका ध्यान रखना होगा। किसीको जड़ मशीनकी तरह काम नहीं करना चाहिये। इसलिये मुझे सलाह देनेवाले सब लोगोंसे मैं यही कहूँगा कि मेरे साथ धीरजसे काम लीजिये और मेरी इस श्रद्धामें शामिल भी हो जाइये कि आजकी दुःखी दुनियाके उद्धारके लिये तलवारकी धार जैसी अहिंसाके दुर्गम मार्गके सिवा दूसरी कोई आशा नहीं है। हो सकता है कि इस सत्यको साबित करनेमें मेरे जैसे करोड़ों आदमी असफल रहें लेकिन वह असफलता अहिंसाके सनातन नियमकी नहीं, बल्कि उन करोड़ोंकी होगी।

बहादुरों की अहिंसा

कांग्रेस प्रेसीडेंटने कांग्रेस महासमितिके अपने आखिरी भाषणमें कहा था कि गांधीजीने "जिस तरह ब्रिटिश हुकूमतके खिलाफ लड़नेका अहिंसक तरीका बताया था उसी तरह वे फिरकेवाराना लड़ाईका मुकाबला करनेके लिये कोई अहिंसक तरीका नहीं बतला सके। गांधीजीने कहा था कि वे अंधेरेमें भटक रहे हैं। उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। हालां कि उन्होंने कहा था कि वे नोआखाली और बिहारके अपने कामसे सारे हिन्दुस्तानकी हिन्दू-मुसलमानकी समस्याको हल कर रहे हैं, फिर भी मैं यह नहीं समझ सका कि आम पैमानेपर अहिंसाका यह तरीका किस तरह काममें लाया जा सकता है। इसीलिये मैं आज गांधीजीके साथ नहीं हूं और मैंने हिन्दुस्तानके बंटवारेकी बात मान ली है।"

गांधीजीका जवाब था कि मेरे अंधेरेमें भटकनेका दरअसल यह मतलब है कि मैं यह नहीं जानता कि लोगोंको अपना दृष्टिकोण कैसे समझाऊं। मेरा यह विश्वास है कि फिरकेवाराना लड़ाईको रोकनेके लिये भी अहिंसाका हथियार उसी तरह कारगर साबित हो सकता है, जिस तरह वह ब्रिटिश हुकूमतके खिलाफ लड़ी गई हमारी आजादीकी लड़ाईमें कारगर साबित हुआ है। उस समय लोगोंने अहिंसाके जरिये लड़ाईमें मेरा साथ दिया था। क्योंकि वे जानते थे कि जबरदस्त ब्रिटिश हथियारोंका मुकाबला और किसी तरह नहीं किया जा सकता। लेकिन वह कमजोरोंकी अहिंसा थी। फिरकेवाराना लड़ाईमें उस अहिंसासे काम नहीं चल सकता। उसके लिये तो बहादुरोंकी सच्ची अहिंसा की जरूरत है।

प्रार्थना-सभामें बोलते हुए गांधीजीने कहा, "मैं कमजोरोंकी अहिंसाको या बहादुरोंकी अहिंसाको जनतामें फैलानेकी अपनी नाकाबिलियतको मंजूर करता हूं। मैं लोगोंमें बहादुरोंकी अहिंसा नहीं पैदा कर सका। इससे कोई यह न समझे कि मैं इस अनमोल गुणको पैदा करने और बढ़ानेका तरीका नहीं जानता। बहादुरोंकी अहिंसाकी साधनाकी सबसे पहली शर्त यह है कि हम अपने दिलमें रामकी जीती-जागती हस्तीको महसूस करें। इस चेतनाको पानेके लिये मन्दिर जानेकी जरूरत नहीं। रोज ईश्वरका नाम जपना कोई खास मानी रखता है। हम यह मान लें कि हिन्दुस्तानके लाखों करोड़ों आदमी रोज किसी खास वक्तपर भगवानको राम, अल्ला, खुदा, अहुरमज्द या जेहोवाके नामसे याद करते हैं। लेकिन अगर ईश्वरका नाम जपनेवाले लोग यदि शराब पीते हैं, व्यभिचार करते हैं, बाजारोंमें सट्टा खेलते हैं, जुआ खेलते हैं और काला बाजार वगैरा करते हैं तो उनका रामधुन गाना बेकार है। उलटे यह उनके लिये शर्मकी बात होगी। एक गन्दे और बेईमानी-भरे दिलवाला आदमी कभी ईश्वरकी सबको पवित्र करनेवाली हस्तीको महसूस नहीं कर सकता। इसलिये यह कहनेकी बनिस्बत कि बहादुरोंकी अहिंसा सिखानेके लिये कोई प्रोग्राम नहीं तैयार किया गया, यह कहना ज्यादा सच होगा (अगर यह हकीकत हो) कि हिन्दुस्तान बहादुरोंकी अहिंसा सीखनेके लिये तैयार नहीं है। यह कहना बिलकुल ठीक होगा कि अभी मैंने जो बहादुरोंकी अहिंसाका प्रोग्राम बताया है वह उतना लुभावना

नहीं है जितना कमजोरोंकी अहिंसाका प्रोग्राम साबित हुआ है। मुझे उम्मीद है कि जो लोग रोज प्रार्थना-सभामें मेरा भाषण सुनने आते हैं, कमसे कम वे तो अपनी जिन्दगीमें बहादुरोंकी अहिंसापर अमल करके दूसरोंको रास्ता दिखायेंगे।

हरिजन-सेवक
२९ जून, १९४७



अमेरिकासे

रिचर्ड ग्रेग साहिब अमेरिकासे लिखते हैं:—

"न्यूयार्कके एक अखबारने नयी दिल्लीसे आयी हुई यह खबर दी है कि आपने १२५ वर्ष जिन्दा रहनेकी आशा छोड़ दी है। और यह कि आजकी हिंसाकी बाढ़में हिन्दुस्तानमें आपके लिए कोई जगह नहीं है। अगर यह खबर बिलकुल ठीक हो, तो मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी बातको बदल दें। मेरी रायमें हिन्दुस्तानकी मौजूदा हिंसासे—अगर यह १५ साल भी चले—हिन्दुस्तानको और दुनियाको उतना खतरा नहीं है जितना कि आपके न रहने से होगा।

"हिन्दुस्तान सभ्यता तथा गहरी और मजबूत आध्यात्मिक (रूहानी) शक्तिका स्रोत है। दुनियामें उसकी सभ्यतासे बढ़कर और कोई दूसरी सभ्यता नहीं है। वह सबसे ज्यादा टिकाऊ भी है हालाँ कि भौतिकवादके पीछे पागल हुए पश्चिमके सम्पर्कमें आने और धर्मको भुला देनेके कारण हिन्दू संस्कृति और सभ्यताको बहुत नुकसान हुआ है। फिर भी हिन्दू सभ्यता आज सबसे बढ़ी-चढ़ी है। 'ज्यादातर दुनिया हिंसा, लालच और ईश्वरको भूल जानेके कारण जल्दी ही बरबाद हो जायगी, लेकिन मुझे आशा है कि अन्तमें हिन्दुस्तानका एक हिस्सा तो ऐसा बचेगा—फिर वह कितना ही छोटा क्यों न हो—जो दुःखी जगतको आध्यात्मिक शक्ति, जीवन और सन्तोष देगा। वही दुनियाके लिये रूहानी आसरा और आशाका दीप होगा।

"आप हिन्दू सभ्यताके सबसे बड़े प्रतीक हैं। आपका जिन्दा रहना सारी दुनियाके लिये बड़ा महत्व रखता है। अगर आज सिर्फ पाँच ही आदमी आपकी बात मानते हों, और ईमानदारीसे अहिंसाके रास्ते चलते हों, तो क्या परवाह है? अनुयायियोंकी कम संख्या ही अहिंसाको उठा सकेगी और आध्यात्मिक शक्तिको ऊँचा चढ़ा सकेगी। जब मनुष्य जाति अपने दुःख दर्दसे बेहतर सबक सीखेगी (इसी तरह ज्यादा लोग सीख सकते हैं) तो दूसरे लोग भी दुनियाकी मुसीबतोंसे बचनेके लिये इस रूहानी स्रोतेकी तरफ लौटेंगे ही। क्या ईश्वरसे यह कहनेका हक है कि अगर हिंसा (जो मनुष्यकी मूर्खता है) लम्बे

अरसे तक चलती रही, तो हम सब प्रयत्न छोड़ देंगे? मैं यह बात जाहिर करने आपसे इसलिये कहता हूँ कि मैं बहुत चाहता हूँ कि आप हमारे साथ रहें।

"मैं थोड़ा और विस्तारसे कह दूं। बरसों तक बड़ी सावधानीके साथ जो आर्थिक अध्ययन किया है, उसने यह बता दिया है कि दुनियामें कई तरहके आर्थिक उतार और चढ़ावके दौर आते रहते हैं। एक दौर आया था ५४ साल का जब थोक मालकी कीमतका जमाना था। दूसरा आया था १८ साल का जब स्थावर सम्पत्तिकी हलचल थी। तीसरे तरहका दौर आया ९ साल का। एक और किस्मका दौर आया साढ़े तीन सालका। बाजारकी सारी छोटी-बड़ी गतियों पर इन्हींका असर पड़ा है। ये सब आर्थिक दौर १९५१-५२में सबसे निचले दर्जे पर पहुंचने वाले हैं। अब हम शायद सबसे भयंकर आर्थिक मन्दीके युगमें प्रवेश कर रहे हैं। यह दुनियाके दूसरे व्यापारी राष्ट्रोंके साथ अमेरिका पर भी छा जाने वाली है। इस समय ग्रेट ब्रिटेन अमेरिकाकी आर्थिक मदद पर निर्भर करता है। मेरा विश्वास है कि जब अमेरिका ग्रेट ब्रिटेनको अनिवार्य रूपसे मदद देना बन्द कर देगा, तब हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोंकी दस्तन्दाजी खतम हो जायगी। मैं मानता हूं कि अगर रूस और अमरिकाके बीच दूसरी बड़ी लड़ाई हुई—जैसा कि आज मुमकिन दिखाई देता है—तो मौजूदा पश्चिमी सभ्यताका और दुनियापर सफेद आदमीकी हुकूमतका खात्मा हो जायगा। मेरा विचार है कि तब हिन्दुस्तानको सर्वनाशसे बचानेका मौका मिलेगा। यह मेरी आशा है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप १२५ वर्ष जीनेकी कोशिश करें ताकि भगवानके सेवकके नाते आप उस बड़े महत्त्वके समयमें अपना फर्ज अदा कर सकें। उस वक्त दुनियाको और हिन्दुस्तानको आजसे भी ज्यादा आपकी जरूरत होगी। चूंकि यह नैतिक दुनिया है और ईश्वरके नियमोंके मुताबिक चलती है, इसलिये लगातार सदियों तक इन नियमोंको तोड़नेके कारण मनुष्य-जातिको दुःख-दर्द तो उठाना ही पड़ेगा। मनुष्योंके दुःखका कारण राष्ट्रोंकी सरकारें भी हैं, जिन्होंने खास तौर पर ईश्वरीय नियमोंको तोड़ा है। इन दुःखदर्दोंके बारेमें सोचनेमें भी भय मालूम होता है। लेकिन अगर वे न आयें, तो समझना चाहिये यह विश्व नैतिक (इखलाकी) नहीं है। इसलिए दुःख ही हमारे आशावादका सबूत है। दुःख ही हमारे इस विश्वासका सबूत है कि दुनियामें ईश्वरके नियम सर्वोपरि हैं। जिस तरह आदमी गुरुत्वाकर्षणके नियमोंको नहीं तोड़ सकता, उसी तरह वह ईश्वरीय नियमोंको भी नहीं तोड़ सकता।

"भगवानकी कृपासे आप जिन्दे रहें। मेहरबानी करके आप पस्त-हिम्मत न हों और हिन्दुस्तान और दुनियाकी खातिर पूरे १२५ बरस जीनेका इरादा न छोड़ें। जैसा कि मैंने आपको पिछले पत्रमें लिखा है, जब राष्ट्र और गिरोहोंकी सियासी सत्ताका फेरबदल होता है उस दरमियान और उसके फौरन बाद हमेशा हिंसा होती ही है। ऐसा अमेरिकामें भी हुआ था। जब १३ अमेरिकन उपनिवेश १७७६में ब्रिटेनसे अलग हुए थे, तब हमारे यहाँ भी दंगे और लड़ाइयाँ हुई थीं। उसे 'शामका गदर' कहा जाता था। सारे पश्चिमका इतिहास भी यही बताता है। हिन्दुस्तानके काफी हिस्से पर पश्चिमी विचारोंका असर पड़ा है, इसलिये यहाँ भी हिंसाकी बाढ़ आ गयी है। लेकिन जब दूसरी लड़ाई आयेगी और हिन्दुस्तानी

निश्चित रूपसे यह देख लेंगे कि मजहबसे दूर रहनेवाली पश्चिमी सभ्यता दुनियाको कहाँ ले जाती है, तब मुझे उम्मीद है कि वे पश्चिमकी हिंसक सभ्यतासे जरूर मुंह फेर लेंगे।"

जो खबर ग्रेग साहबने पढ़ी वह बहुत हद तक ठीक है। जब मैंने जाना कि मुझमें काफी अनासक्ति नहीं है तो मैंने १२५ बरस जीनेकी आशा खो दी। अपने गुस्से और भावनाओंपर मैं इतना काबू नहीं पा सका हूँ कि मैं १२५ बरस जीनेकी उम्मीद कर सकूं। एक दिन इस दुःखद बातका मुझे अनुभव हुआ कि मुझमें जरूरी अनासक्ति नहीं है। जिस आदमीका जीवन सेवामय नहीं है, उसे जीनेका कोई हक नहीं है और गीतामें लिखा है कि जिसमें अनासक्ति नहीं, वह पूरी पूरी सेवा नहीं कर सकता।

अपनी कमियोंका सच्चा इकरार करनेसे आत्माका भला होता है, इससे आदमीको अपनी कमियोंको दूर करनेकी शक्ति भी मिलती है। 'हरिजन'के पाठकोंको जानना चाहिये कि मैं अपनी कमियोंको दूर करनेकी हर कोशिश कर रहा हूँ, ताकि मैं खोयी हुई आशाको फिर पा लूं। इस सिलसिलेमें मुझे यह भी दोहरा देना चाहिये कि जो कोई अपना जीवन मनुष्यकी सेवामें अर्पण कर देता है, उसे यह उम्मीद रखनेका हक जरूर है। इसे एक शेखचिल्लीका सपना हरगिज नहीं समझना चाहिये। मुझे और मेरे जैसे दूसरे कोशिश करनेवालोंको इसमें सफलता न मिले, तो इससे यह साबित नहीं होगा कि १२५ बरस जिन्दा रहना नामुमकिन है।

मैंने यह कहा है कि हिंसक समाजमें मेरे लिये कोई जगह नहीं है। लेकिन इस कथनका अखबारी रिपोर्टमें बतायी गयी मेरी निराशासे कोई संबंध नहीं है। मैं जान बूझकर यहाँ 'रिपोर्टमें बतायी गयी' विशेषणका उपयोग करता हूँ। क्योंकि मैं निराशाके ख्याल तकको अपने दिलमें जगह नहीं देना चाहता। यह लाजिमी नहीं है कि मैंने उस वक्त जो कहा वह आज भी सच हो। मैं कहता हूँ कि वह आज इतना सच नहीं है।

इतना तो स्पष्ट हो जाना चाहिये कि हिंसक समाजमें अहिंसाके पुजारीके लिये कोई जगह नहीं हो सकती। फिर भी यह संभव है कि वह पूरे १२५ साल तक जिन्दा रहे और लगातार कोशिश करके उस समाजमें अपने लिये जगह बना लेनेकी उम्मीद रखे। मेरे दूसरे कथनके यही माने हैं। मैं समाजमें रहते हुए भी समाजका नहीं हूँ। ऐसा करने से मैं हिंसाका विरोध बताता हूँ।

क्या तीस सालकी अहिंसाकी कोशिशका नतीजा हिंसा ही निकला? इस सवालका जवाब तो मैं अपने प्रार्थनाके बाद भाषणमें बता चुका हूँ। मेरी आशा है कि हिंसा हिन्दुस्तानके गाँवोंमें अभी नहीं पहुँची है। जो भी हो, मैं ग्रेग साहबकी आगाहीसे सहमत हूँ कि "हमें ईश्वरसे यह तो कभी नहीं कहना चाहिये कि अगर हिंसा (इन्सानकी मूर्खता) हमारी आशाके मुताबिक खास समयके भीतर खत्म न हो, तो हम अपने सारे प्रयत्न, जहाँ तक जी सकें वहाँ तक जीनेका प्रयत्न भी, छोड़ देंगे।" मुझे लगता है कि न्यूयार्कके अखबारोंमें जो खबर गयी वह अपूर्ण थी। इसी वजहसे ग्रेग साहबके दिलमें शंका पैदा हुई। मुझे आशा है कि मैं ईश्वरका जज कभी नहीं बन सकता।

हरिजन-सेवक

२९ जून १९४७

गायको कैसे बचाया जाय?

हिन्दू धर्म और हिन्दुस्तानी जीवनकी माली व्यवस्थामें गायकी क्या जगह है, इसके बारेमें लोग बहुत ही कम जानते हैं। हिन्दुस्तान विदेशी हुकूमतसे आजाद तो हो गया लेकिन साथ ही देशकी सारी पार्टियोंकी एक रायसे उसके दो टुकड़े भी हो गये हैं। इससे आम लोगोंमें विश्वास पैदा हो गया है कि वे एक हिस्सेको हिन्दू हिन्दुस्तान और दूसरेको मुस्लिम हिन्दुस्तान कहने लगे हैं। इस विश्वासका समर्थन नहीं किया जा सकता है। फिर भी दूसरे सारे झूठे विश्वासोंकी तरह हिन्दू हिन्दुस्तान और मुस्लिम हिन्दुस्तानका यह विश्वास भी बड़ी कठिनाईसे दूर होगा। सच बात तो यह है कि जो कोई अपने आपको इस देशकी सन्तान कहते हैं और हैं, वे सब हिन्दुस्तानी संघ और पाकिस्तानके एक से नागरिक हैं। फिर वे किसी भी धर्म या रंगके हों।

फिर भी प्रभाववाले हिन्दू बहुत बड़ी तादादमें यह झूठा विश्वास करने लगे हैं कि हिन्दुस्तानी संघ हिन्दुओंका है इसीलिये उन्हें कानूनके जरिये अपने उस विश्वासको गैर-हिन्दुओंसे भी जबरन मनवाना चाहिये। इसीलिये, यूनियनमें गायोंकी हत्याको रोकनेका कानून बनवाने के लिये सारे देशमें जोशकी एक लहर सी फैल रही है।

ऐसी हालतमें—जिसकी नींव मेरी रायमें अज्ञान है—हिन्दुस्तानमें दूसरों जैसा ही गायका भक्त और समझदार प्रेमी होनेका दावा करते हुए मुझे अच्छेसे अच्छे ढंगसे लोगोंके इस अज्ञानको दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिये।

सबसे पहले हम यह समझ लें कि धार्मिक मानोंमें गायकी पूजा बड़े पैमानेपर सिर्फ गुजरात, मारवाड़, यू० पी०, और बिहारमें ही होती है। गुजराती और मारवाड़ी लोग साहसी व्यापारी होते हैं; इसलिये वे इस बारेमें बड़ीसे बड़ी आवाज उठानेमें कामयाब हुए हैं। लेकिन गोहत्याके खिलाफ आवाज उठानेके साथही साथ वे अपनी व्यापारी बुद्धिको हिन्दुस्तानके पशु-धनकी रक्षाके बड़े मुश्किल सवालको हल करनेमें नहीं लगा रहे हैं।

अपने धर्मके आचार-विचारको दूसरे धर्मके लोगोंपर लादना बिलकुल गलत चीज है।

अगर गो-रक्षाके सवालको सिर्फ माली जरूरतकी निगाहसे ही देखा जाय तो यह बड़ी आसानीसे हल किया जा सकता है। लेकिन शर्त यह है कि उसपर सिर्फ माली आधार-पर ही विचार किया जाय। उस हालतमें दूध न देनेवाले सारे मवेशी, अपने पालनेके खर्चसे भी कम दूध देनेवाली गायें और बूढ़े और बेकार जानवर बिना किसी हिचकिचाहटके मार डाले जाने चाहिये। इस बेरहम माली व्यवस्थाको हिन्दुस्तानमें कोई जगह नहीं है, हालाँकि आपसी विरोधवाले मतोंवाले इस देशके लोग कई कठोर काम करनेके अपराधी हो सकते हैं और सचमुच हैं।

अब सवाल यह है कि जब गाय अपने पालन-पोषणके खर्चसे भी कम दूध देने लगती है, या दूसरी तरहसे नुकसान पहुँचानेवाला बोझ बन जाती है, तब बिना मारे उसे कैसे बचाया जा सकता है? इस सवालका जवाब इस तरह थोड़ेमें दिया जा सकता है :

(१) हिन्दू, गाय और उसकी सन्तानकी तरफ अपना फर्ज पूरा करके उसे बचा सकते हैं। और वे ऐसा करें, तो हमारे जानवर हिन्दुस्तान और दुनियाके गौरव बन सकते हैं। आज इससे बिलकुल उलटा हो रहा है।

(२) जानवरोंके पालन पोषणका सायंस सीखकर गायकी रक्षा की जा सकती है। आज तो इस काममें पूरी अन्धा-धुन्धी चलती है।

(३) हिन्दुस्तानमें आज जिस बेरहम तरीकेसे बैलोंको बधिया बनाया जाता है, उसकी जगह पश्चिमके हमदर्दी भरे और नरम तरीके काममें लाकर उसे बचाया जा सकता है।

(४) हिन्दुस्तानके सारे पिंजरापोलोंका पूरा पूरा सुधार किया जाना चाहिये। आज तो हर जगह पिंजरापोलका इन्तजाम ऐसे लोग करते हैं जिनके पास न तो कोई योजना होती है और न वे अपने कामकी जानकारी ही रखते हैं।

(५) जब ये महत्वके काम कर लिये जायंगे, तो मुसलमान खुद दूसरे किसी कारणसे नहीं तो अपने हिन्दू भाइयोंकी खातिर ही मांस या दूसरे मतलबके लिये गायको न मारनेकी जरूरतको समझ लेंगे। पढ़नेवाले यह देखेंगे कि ऊपर बतायी हुयी जरूरतके पीछे एक खास चीज है। वह है अहिंसा, जिसे दूसरे शब्दोंमें प्राणीमात्रपर दया कहा जाता है। अगर इस सबसे बड़े महत्वकी बातको समझ लिया जाय, तो दूसरी सब बातें आसान बन जाती हैं। जहाँ अहिंसा है, वहाँ अपार धीरज, भीतरी शान्ति, भले-बुरेका ज्ञान, आत्म-त्याग और सच्ची जानकारी भी है। गो-रक्षा कोई आसान काम नहीं है। उसके नामपर देशमें बहुत पैसा बरबाद किया जाता है। फिर भी अहिंसाके न होनेसे हिन्दू गायके रक्षक बननेके बजाय उसके नाश करनेवाले बन गये हैं। गो-रक्षाका काम हिन्दुस्तानसे विदेशी हुकूमतको हटानेके कामसे भी ज्यादा कठिन है।

हरिजन-सेवक
३१ अगस्त, १९४७

अहिंसा कहां, खादी कहां?

काठियावाड़से एक भाई लिखते हैं :—

"दूसरे सूबोंकी तरह यहां काठियावाड़में भी खादी और अहिंसा परसे अपनी श्रद्धा हटा लेनेवालोंकी तादाद बढ़ती जा रही है, ऐसी दलीलें पेश करनेवाले आज कांग्रेसी हैं और गान्धी-भक्त भी हैं।"

इस खतमें इस तरहकी बहुतसी बातें लिखी हैं, मगर मैंने तो सिर्फ उसमेंसे मुद्देकी बात निकाल ली है।

इस छोटेसे वाक्यमें तीन विचारदोष हैं। मैं पहले कई बार समझा चुका हूं कि काठियावाड़ या दूसरे प्रदेशोंने अहिंसामें या खादीमें श्रद्धा रक्खी ही नहीं थी। मैंने यह मानकर अपने आपको धोखा दिया था कि लोग अहिंसाका पालन करते हैं और खादीको उसकी निशानीकी तरह अपनाते हैं। अहिंसाके नामपर लोगोंने कमजोरोंको शान्त रक्खा, मगर उनके दिलोंसे तो हिंसा कभी गई ही नहीं। अब तो इस बातको हम अच्छी तरहसे देख सकते हैं। काठियावाड़में राम नहीं है, यह बात तो जब मैं राजकोटके किस्सेके बारेमें गया था, तभी साफ मालूम हो गई थी। इसलिए यह कहनेमें कोई सार नहीं है कि आज काठियावाड़की श्रद्धा कम होती जा रही है।

राजनीतिमें अहिंसा नहीं चल सकती, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। जब आप परदेशी हुकूमतके खिलाफ लड़े, तब वह राजनीति नहीं थी, तो और क्या था? अब तो राजनीति बहुत थोड़ी है। आज धर्मके नामपर लूट-पाट होती है। लोगोंने परदेशी हुकूमतके खिलाफ लड़नेमें जो शान्ति रक्खी, वह आज मानो खत्म हो गयी है।

तीसरा दोष यह है कि इसमें कांग्रेसी और गांधी-भक्तोंके बीच भेद किया गया है। इस भेदको मैं बिलकुल बेबुनियाद मानता हूँ। अगर कोई गांधी-भक्त हो, तो वह मैं ही हूँ। मगर मुझे उम्मीद है कि ऐसा घमण्ड मुझमें नहीं है। भक्त तो भगवानके होते हैं। मैं तो अपनेको भगवान नहीं मानता। फिर मेरे भक्त कैसे? और यह कैसे कहा जा सकता है कि अपने आपको गांधीभक्त कहनेवाले लोग कांग्रेसी नहीं हैं? कांग्रेसके ऐसे अनगिनत सेवक हैं जो उसके चार आना मेम्बर भी नहीं हैं। उनमेंसे मैं भी एक हूँ। इसलिए यह भेद कृत्रिम है।

आज देशमें कई चीजें चल रही हैं। उनमें मेरा जरा भी हिस्सा नहीं है, यह बात मुझे जोर-जोरसे कहनी चाहिये मैं कह तो चुका हूँ कि यह छिपी बात नहीं है कि कांग्रेसने हुकूमत संभाली, तबसे वह अहिंसाको तिलांजलि दे चुकी है। मेरी रायमें, कांग्रेस सरकारने खुराक और कपड़ेपर जिस तरह अंकुश रखा है, वह घातक है।

मेरी चले, तो मैं अनाजका एक दाना भी बाहरसे न खरीदूं। मेरा विश्वास है कि आज भी हिन्दुस्तानमें काफी अनाज है। सिर्फ कंट्रोलकी वजहसे देहातके लोग उसे छिपाकर रखनेकी जरूरत महसूस करनेको लाचार हुए है। अगर लोग मेरी बात मानते होते, तो हिन्दू, सिख और मुसलमानोंके बीच कभी लड़ाई नहीं होती। साफ बात यह है कि मेरी बातकी आज कोई कीमत नहीं रही। मेरी आवाजकी कीमत अब अरण्य-रोदन या जंगलोंमें रोनेके बराबर हो गई है।

खादीको अहिंसासे अलग करें तो उसके लिए थोड़ी जगह जरूर है। मगर अहिंसाकी निशानीके रूपमें जो उसका गौरव होना चाहिये, वह आज नहीं है। राजनीतिमें हिस्सा लेनेवाले जो लोग आज खादी पहनते हैं, वे रिवाजकी वजहसे ऐसा करते हैं। आज जय खादी-की नहीं, बल्कि मिलके कपड़ेकी है। हम मान बैठे हैं कि अगर मिलें न हों, तो करोड़ों इंसानोंको नंगा रहना पड़े। इससे बड़ा भ्रम और क्या हो सकता है? हमारे देशमें काफी कपास है, करघे हैं, चरखे हैं। कातने-बुननेकी कला है, फिर भी यह डर हमारे दिलोंमें घर कर गया है कि करोड़ों लोग अपनी जरूरतकी कमी पूरी करनेके लिये अपने कातने-बुननेका काम अपने हाथोंमें नहीं लेंगे। जिसके दिलमें डर समा गया है, वह उस जगह भी डरता है, जहाँ डरका कोई कारण नहीं होता, और डरसे जितने लोग मरते हैं, उतने रोगसे या मौतसे नहीं मरते हैं?

हरिजन सेवक
२ नवम्बर, १९४७

४३

अहिंसा उनका क्षेत्र नहीं!

एक अखबारी रिपोर्टमें बताया गया है कि मेजर जनरल करिअप्पाने अहिंसाके बारेमें नीचे लिखी बातें कही हैं:—

"आजकी हालतमें हिन्दुस्तानको अहिंसासे कोई फायदा नहीं होगा। सिर्फ ताकतवर फौज ही हिन्दुस्तानको दुनियाके सबसे बड़े राष्ट्रोंमें जगह दिला सकती है।"

मुझे डर है कि अहिंसाके बारेमें ऊपरकी बात कहकर बहुतसे निष्णातों या माहिरोंकी तरह जनरल करिअप्पा अपनी हदसे बाहर चले गये हैं और अनजानमें ही उन्होंने अहिंसाकी ताकतके बारेमें बड़ी गलत कल्पना कह बतायी है। कुदरती तौरपर अपने क्षेत्रमें काम करते हुए, उन्हें अहिंसाकी ताकत और उसके कामका बहुत छिछला ज्ञान ही हो सकता है। जीवन भर अहिंसापर अमल करनेके कारण मैं अहिंसाका माहिर होनेका दावा करता हूँ। हालाँकि मैं बहुत अपूर्ण हूँ। साफ और निश्चित शब्दोंमें मैं यह कहना

चाहता हूँ कि मैं जितना ज्यादा अहिंसापर अमल करता हूँ, उतना ही साफ मुझे यह दिखाई देता है कि मैं अपने जीवनमें अहिंसाको पूरी तरह उतारनेकी हालतसे कोसों दूर हूं। इस तथ्य या सच्चाईकी जानकारी, जो कि दुनियामें सबसे भारी फर्ज है, न होनेसे ही जनरल करिअप्पाने यह कहा है कि आजके जमानेमें हिंसाके सामने अहिंसा कुछ नहीं कर सकती। लेकिन मैं तो हिम्मतके साथ यह कहता हूँ कि इस ऐटम-बमके जमानेमें शुद्ध अहिंसा ही ऐसी ताकत है जो हिंसाकी सारी चालोंको नीचा दिखा सकती है। जनरल करिअप्पा जिन्हें अब फौजी साइन्स और फौजी अमलके अपने जानकार ब्रिटिश उस्तादोंकी मदद नहीं मिल सकती, इस तरह अपनी सीमाको न लांघते तो अच्छा होता। जनरल करिअप्पासे ज्यादा बड़े बड़े जनरलोंने काफी समझदारी और नम्रतासे साफ साफ शब्दोंमें यह कबूल किया है कि अहिंसाकी ताकत क्या कुछ कर सकती है, इसके बारेमें उन्हें कहनेका कोई हक नहीं है। हम फौजी साइंस और फौजी अमलका भयानक दिवालियापन उसकी जन्मभूमि जगहोंमें देख रहे हैं। जो आदमी सट्टा बाजारमें जुआ खेलकर दिवालिया बना है, उसे क्या उस खास तरहके जुएकी तारीफके गीत गाने चाहिए?

हरिजन सेवक

१६ नवम्बर, १९४७



अहिंसा की मर्यादा

एक सज्जनने मुझे खत लिखा है। उसका सार इस तरह है :—

"व्यक्तिगत अहिंसा समझी जा सकती है। दोस्तोंके बीचकी समाजी अहिंसा भी समझमें आ सकती है। लेकिन आप तो कहते हैं कि दुश्मनोंके सामने भी अहिंसाका इस्तेमाल किया जा सकता है। यह तो आकाशके फूल सी असंभव बात मालूम होती है। मेहरबानी करके आप यह हठ छोड़ दें तो अच्छा हो। अगर आप अपना यह हठ नहीं छोड़ेंगे तो आज तक की कमाई हुई आबरू खो देंगे। आप महात्मा माने जाते हैं, इसलिये समाजके बहुतसे लोग आपके रास्ते चलकर दुःखी और पामाल हो रहे हैं और आगे भी होंगे। इससे समाजको नुकसान हो रहा है।"

जिस अहिंसाकी हद एक व्यक्ति तक है, वह समाजके कामकी नहीं। मनुष्य समाजी जीव है। इसलिए उसकी शक्तियाँ ऐसी होनी चाहिए कि समाजके सब लोग कोशिशसे उन्हें अपनेमें बढ़ा सकें। दोस्तोंके बीच ही जो सीखा और बढ़ाया जा सके, वह गुण विनय या नम्रता है। उसमें अहिंसाका थोड़ा अंश है। लेकिन वह अहिंसाके नामसे पहचाने जाने लायक नहीं है। अहिंसाके सामने वैरका त्याग होना ही चाहिये, यह महा-

वाक्य है। यानी जहाँ वैर अपनी आखिरी हद तक पहुँच चुका हो, वहाँ इस्तेमाल की जानेवाली अहिंसा भी ऊँचीसे ऊँची चोटी तक पहुँची हुई होनी चाहिये। यह अहिंसा सीखनेमें बहुत समय लगेगा। संभव है पूरी जिन्दगी खतम हो जाय। लेकिन उससे वह बेकार या निरर्थक नहीं हो जाती। इस अहिंसाके रास्ते चलते चलते कई अनुभव होंगे। वे दिनों दिन ज्यादा भव्य और प्रभावशाली होंगे। अहिंसाकी आखिरी चोटीपर पहुँचनेपर उसकी सुन्दरता कैसी होगी, इसकी झांकी यात्रीको रोज-ब-रोज देखनेको मिलती रहेगी और उसकी खुशी व उत्साह बढ़ेगा। इसका मतलब यह नहीं लगाया जा सकता कि मुसाफिरको रास्तेमें दिखलाई देनेवाले सारे दृश्य मीठे और लुभावने मालूम होंगे। अहिंसाका रास्ता गुलाबके फूलोंकी सेज नहीं, वह कांटोंका रास्ता है। प्रीतम कविने गाया है कि 'हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जोने।'

इस समयका वातावरण इतना जहरीला बन गया है कि हम सयाने और अनुभवी लोगोंके वचन याद रखनेसे इन्कार करते हैं। रोज रोज होनेवाले छोटे मोटे अनुभवोंको भी नहीं देख सकते। बुराईका बदला भलाईसे चुकाना चाहिए, यह बात सबके मुंह पर होती है। इसका रोज रोज अनुभव भी होता है। फिर भी हम यह क्यों नहीं देख सकते कि अगर यह दुनिया वैरसे भरी होती, तो इसका कभी अन्त हो गया होता? आखिरमें दुनियामें प्रेम ही बढ़ता गया। उससे दुनिया टिकी है और टिकती है।

इतनी बात सच है कि अहिंसाकी तालीम लेनी होती है और उसे बढ़ाना पड़ता है। उसकी गति ऊपर को होती है इसलिए उसको ऊँची से ऊँची चोटी तक पहुँचानेमें बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। नीचे उतरनेमें मेहनत नहीं पड़ती। हम सब इस बारेमें अशिक्षित हैं, इसलिए जीवनमें मारकाट, गाली गलौजसे ही हमारा स्वाभाविक अनुभव होता है।

अहिंसा अनुभवसे मँजे हुए आदमीको ही चुनती है।

हरिजन सेवक
१४ दिसम्बर, १९४७



क्या मैं इसका अधिकारी हूँ?

मेहमानदारी करनेवाले हिन्दुस्तानका किनारा छोड़नेसे पहले रेवरेण्ड डा० जोन हेनिस होम्सने मुझे एक लम्बा खत लिखा था। उसमें वह कहते हैं :—

"बेशक, हालके महीनोंमें होनेवाली दुःखभरी घटनाओंसे आप बहुत ज्यादा दुःखी हुए हैं—उनके बोझमें आप दबसे गये हैं—लेकिन आपको यह कभी नहीं महसूस करना चाहिये कि इनमें आपकी जिन्दगीके कामको किसी तरहका धक्का लगा है। मनुष्य स्वभाव

ज्यादा सहन नहीं कर सकता—वह बहुत बड़े दबावके नीचे टूट पड़ता है—और इस मामलेमें यह दबाव जितना अचानक था, उतना ही भयानक भी था। लेकिन इस मौके पर भी हमेशाकी तरह आपका उपदेश सच्चा और आपका नेतृत्व ठोस बना रहा। आपने अकेले हाथों हिन्दुस्तानको बरबादीसे बचा लिया और अब पल-भरके लिये जो हार दिखायी दी, उसमेंसे जीतको जन्म दिया। पिछले कुछ महीनोंको मैं आपके अनोखे जीवनकी बड़ी-से-बड़ी विजयके महीने मानता हूं। इन अंधेरेसे भरे दिनोंमें आप जितने महान साबित हुए हैं, उतने पहले कभी न हुए थे।"

मुझे ताज्जुब होता है कि क्या यह दावा साबित किया जा सकता है? इसमें मुझे जरा भी शक नहीं कि अहिंसाके बारे में डा० होम्सने जो कुछ कहा है, उससे कई गुना साबित करके दिखाया जा सकता है। मेरी कठिनाई बुनियादी है। क्या डा० होम्सने अहिंसाकी जितनी तारीफ की है, उसके उतने गुण भी दुनियाको दिखाने लायक योग्यता मैंने हासिल कर ली है? मैं अहिंसाके कामोंको कितने ही अपूर्ण रूपसे क्यों न जानूं, फिर भी उसके बारेमें ऐसे दावे जिन्हें बिना किसी शकके साबित न किया जा सके पेश करनेमें ज्यादा से ज्यादा सावधानी रखना मैं हर कारणसे जरूरी समझता हूं।

हरिजन सेवक
११ जनवरी, १९४८



अहिंसा कभी नाकाम नहीं जाती

एक यूरोपियन भाई और गांधीजीके बीच जो खत आये गये हैं वे सबके लाभके लिये नीचे दिये जाते हैं।

यूरोपियन भाई लिखते हैं :—

"राय वाकरने आपके काम पर, जो [illegible] है, "सोर्ड आफ गोल्ड" नामकी एक किताब लिखी है, जिसे पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मैंने उस किताबको ध्यानसे पढ़ा। उससे पता चला कि आपने जिन्दगी भर अहिंसापर चलने और दूसरोंको चलानेकी पूरी कोशिश की है। किताब पढ़कर मेरी तसल्ली हो गई कि कम से कम जहां तक हिन्दुस्तानके नेताओं और आम लोगोंका सवाल है, आपकी अपार लगनकी बदौलत आपको अपने काममें कामयाबी मिली है। ब्रिटेनने जो जाहिरा तौरपर इस तरह नेकदिली और दोस्तीके साथ हिन्दुस्तान छोड़ दिया, उससे यह उम्मीद मालूम होती है कि अहिंसाकी कदर सिर्फ आपके ही मुल्क तक महदूद नहीं है। मालूम होता है हिंसाकी मजबूत, मोटी दीवालें पहली बार कहीं कहीं कुछ टूटी हैं, और इन्सानी समाजके लिये कुछ भले दिन आनेवाले हैं।

पर जार्ज डेवीजके 'पीस न्यूज' के आखिरी एडीशनमें यह छपा है कि आप

खुद एक तरह अपनी हार मान रहे हैं। इसे पढकर मुझे उतनी ही मायूसी हुई। मेरा दिल यह पढकर बड़ा दुःखी हुआ कि आपको खुद आज जो मायूसी अपने दिलमें महसूस हो रही है, वह पहले कभी नहीं हुई थी। यह सच है कि ईश्वर आदमी की कामयाबी नहीं देखता, बल्कि उसकी सच्चाई और प्रेम देखता है। फिर भी यह देखकर दुःख होता है कि इन्सानी समाज हिंसामें इतना डूबा हुआ है कि आपने और आपके थोड़ेसे साथियोंने जिन्दगी भर जो रूहानी ताकत दिखाई है और जबरदस्त कुर्बानियाँ की हैं, उनका भी समाजपर असर नहीं हुआ है।

"मैं मानता हूँ कि चीजोंकी असलियतको जितनी अच्छी तरह आप देख और समझ सकते हैं। फिर भी मैं नहीं मान सकता कि आपकी इतनी जबरदस्त और बहादुरोंकी कोशिशें निकम्मी जायें और इन्सानी समाजपर उनका असर न हो। आपने अपने शब्दोंसे और अपने कामोंसे जो अच्छे बीज मेहनतके साथ लगातार अपने चारों तरफ बोये हैं, वे फिजूल जायें, यह दिल नहीं मानता।

"जो भी हो कम से कम (और मुझे भरोसा है कि जो बात मैं कहता हूँ वही करोड़ोंके दिलसे निकल रही है) मैं अपना जरूरी फर्ज समझता हूँ कि आप जिस चीजको इन्सानी समाजके भले और उसके छुटकारेका एकमात्र रास्ता मानते थे उसके लिये आपने जो अपनी सारी जिन्दगी दे दी, उसके लिये मैं दिलसे आपका हद दर्जेका अहसान मानूं।"

जिस रिपोर्टका आपने जिक्र किया है, वह मैंने नहीं देखी। कुछ भी हो, मैंने जो कुछ भी कहा है, उसका मतलब अहिंसाकी नाकामीसे नहीं है। मैंने जो कुछ कहा है उसका मतलब यह है कि मैं खुद वक्तपर इस बातको न देख सका कि जिसे मैंने अहिंसा समझा था, वह अहिंसा थी ही नहीं बल्कि कमजोरोंका पैसिव रेसिस्टेंस—निष्क्रिय विरोध—था, जो किसी मानीमें भी कभी अहिंसा कहा ही नहीं जा सकता। आज हिन्दुस्तानमें जो भाई भाईकी लड़ाई हो रही है, वह सीधा नतीजा उन ताकतोंका है जो तीस बरसके कमजोरोंके कारनामोंने पैदा कर दी हैं। इसलिए आज जो दुनिया भरमें हिंसा फूट पड़ी है उसे ठीक ठीक देखनेका सही तरीका यही है कि हम इस बातको समझें कि मजबूत लोगोंकी उस अहिंसाका ढंग, जिसे कोई जीत ही नहीं सकता, अभी हमने बिलकुल पूरी तरह समझ नहीं पाया है। सच्ची अहिंसाकी ताकतका एक माशा भी कभी जाया नहीं जा सकता। इसलिए हमें यह घमंड नहीं करना चाहिये—और न आप जैसे दोस्तोंको इस धोखेमें रहना चाहिये कि मैंने अपने अन्दर भी कोई बड़ी बहादुरी भरी और टकसाली अहिंसा बतायी है। मैं सिर्फ इतना दावा कर सकता हूँ कि मैं बिना रुके उस तरफ बढ़ा चला जा रहा हूँ।

मेरी इस बातसे अहिंसामें आपका विश्वास मजबूत हो जाना चाहिये और इससे आपको और आप जैसे दोस्तोंको इस रास्ते पर और तेजीसे बढ़नेमें मदद मिलनी चाहिये।

हरिजन सेवक
११ जनवरी, १९४८

[३० जनवरी १९४८ को सायंकालकी प्रार्थनाके
लिये जाते समय हत्यारेकी गोलीसे
मानवताके पुजारी विश्व-वंद्य
महात्मा गांधीका देहावसान
हो गया ।]